ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 29 नवम्बर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 29 नवम्बर 2015 से 05 दिसम्बर 2015

मा.कु. –04 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 48, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. इंटरनेशनल में हुआ दो दिवसीय नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर का आयोजन

''वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती, गिरते नैतिक मूल्य और चारित्रिक पतन–कहा डॉ. पूनम सूरी ने''

डी.ए.वी. इंटरनेशनल स्कूल में शिक्षक–शिक्षिकाओं के लिए आयोजित दो दिवसीय नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर के उद्घाटन सत्र के मुख्य वक्ता आर्यरत्न डा. पूनम सूरी ने अध्यापक–अध्यापिकाओं का आह्वान करते हुए कहा कि आज के संदर्भ में डी.ए.वी. संस्थाओं के प्रधानाचार्यों एवं शिक्षक–शिक्षिकाओं पर एक विशेष उत्तरदायित्व आयद हुआ है कि वे विद्यार्थियों के माध्यम से उनके अभिभावकों एवं समाज में गिरते हुए नैतिक मूल्यों और चारित्रिक पतन से बचाव के कारगर उपायों का चिंतन करें।

उन्होंने कहा कि डी.ए.वी. स्थापना काल के शिक्षा के स्वरूप को लेकर जिन नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों को सरोकार बना गया था आज उनको पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

कार्यक्रम का शुभारंभ यज्ञ से किया गया जिसमें 'मान्य डा. पूनम सूरी व उनकी सहधर्मिणी श्रीमती मनी सूरी मुख्य यजमान बने। 250 से अधिक अध्यापक–अध्यापिकाओं, प्राचार्यों एवं आर्य समाज के माननीय सदस्यों ने आहुतियाँ अर्पित की। इस अवसर पर डा. श्रीमती नीलम कामरा–प्रधाना, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब, श्री जे.पी. शूर–, मंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब, श्री एस.के. शर्मा– महामंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, श्री सत्यपाल आर्य– सचिव, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति आचार्य चैतन्य, मुनि, यति सत्याप्रिया, डॉ. विनय कुमार विद्यालंकार, चैयरमैन डा. वी.पी. लखनपाल, प्रबंधक डा. राजेश कुमार एवं प्रि. अंजना गुप्ता विशेष रूप से उपस्थित थे।

मुख्य कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में वेद मंत्रों से दीप प्रज्ज्वलन हुआ। श्री जे.पी. शूर द्वारा नैतिकता के लिए प्रारंभ किए गए इस पवित्र अभियान की प्रशंसा की और डा. पूनम सूरी तथा अन्य उपस्थित गणमान्य अतिथियों का स्वागत किया।

19 एवं 20 नवंबर को आयोजित सत्रों में माननीय आचार्य चैतन्य मुनि जी ने डी.ए.वी. के शिक्षा संकल्प के रूप में नैतिकता की अवधारणा की स्थापना की और अध्यापक वर्ग को उन मूल्यों को बनाए रखने की प्रेरणा दी जो इस संस्था की आधारशिला रहे हैं। उन्होंने कहा जब सब लोग आर्य बनेंगे, श्रेष्ठ बनेंगे तो हर प्रकार का दुराचार, अनाचार समाप्त हो जाएगा। शिक्षक वर्ग का कर्तव्य है कि विद्यार्थियों को नैतिक मूल्य सिखाएं, वैदिक मूल्य सिखाएं, देश एवं समाज का कल्याण स्वतः हो जाएगा। समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए नैतिक शिक्षा अति अनिवार्य है और शिक्षक–शिक्षिकाएं इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

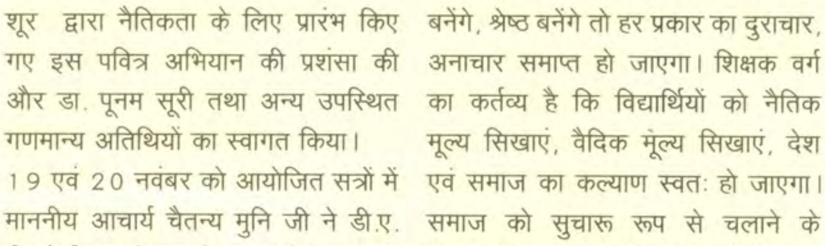

डा. विनय कुमार विद्यालंकार ने भी ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए धर्म एवं संप्रदाय के अंतर को स्पष्ट किया और वेद आधारित ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को उजागर किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर इस संसार का निमित्त है, मूल प्रकृति उपादान है और अन्य तत्व साधारण कारण हैं। ईश्वर ने जीव के कल्याण के लिए जगत् की उत्पत्ति की है। उन्होंने भगवान एवं ईश्वर में भेद स्पष्ट करते हुए कहा कि ईश्वर अनंत अनादि एवं अजन्मा है वह उपासनीय है परन्तु भगवान अनुकरणीय है। भक्त अपने भगवान् द्वारा किए गए कार्यों का अनुकरण करते हैं। उन्होंने व्रत और उपवास का वेद भी समझाया और आत्मविश्लेषण पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ईश्वर से डरना नहीं चाहिए उसकी आज्ञाओं का पालन कर उसका प्रिय बनना चाहिए यही सच्चे सुख का आधार है।

इस अवसर पर शिक्षक वर्ग द्वारा नैतिक मूल्यों एवं ईश्वर की परमसत्ता पर चर्चा भी की गई उनकी शंकाओं का निवारण भी किया गया। भजन प्रस्तुत किए गए।

प्रि. अंजना गुप्ता ने इस महत्वपूर्ण आयोजन का सुअवसर प्रदान करने हेतु आर्य रत्न माननीय डा. पूनम सूरी जी का आभार व्यक्त किया। महात्मा चैतन्य मुनि एवं डा. विनय कुमार का आभार व्यक्त करते हुए उन्होंने शिक्षक वर्ग को उनकी शिक्षा लेने की प्रेरणा दी।

डी.ए.वी. अशोक विहार फेज़ IV में रोटरी क्लब ने लगाया दंत-जांच शिविर

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल फेज् IV अशोक विहार में रोटरी क्लब (दिल्ली) की ओर से दंत स्वास्थ्य जाँच शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में सुप्रसिद्ध दंत चिकित्सक तथा शल्य चिकित्सक डॉ. आदित्य वोहरा तथा उनकी टीम ने अत्याधुनिक जाँच सुविधाओं तथा उपकरणों से लैस वैन में, 300 से भी अधिक छात्रों तथा अध्यापकों के दंत स्वास्थ्य की जाँच की।

वरिष्ठ रोटेरियन श्री वी.के. भाटिया तथा श्री वी.के. जैन ने भी शिविर में उपस्थित होकर अपने अमूल्य समय का योगदान दिया। उन्होंने छात्रों को दाँतों एवं मुख की स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

इस अवसर पर कार्यक्रम को अगले स्तर पर ले जाने की उद्घोषणा भी की गई, जिसके अंतर्गत छात्रों को दाँतों की समस्याओं से मुक्त कराने तथा समाज में दंत एवं मुख स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए विद्यालय को चयनित किया गया।

विद्यालय की प्राचार्या तथा समर्पित रोटेरियन श्रीमती कुसुम भारद्वाज जी ने इस शिविर के आयोजन में अग्रणी भूमिका निभाई।

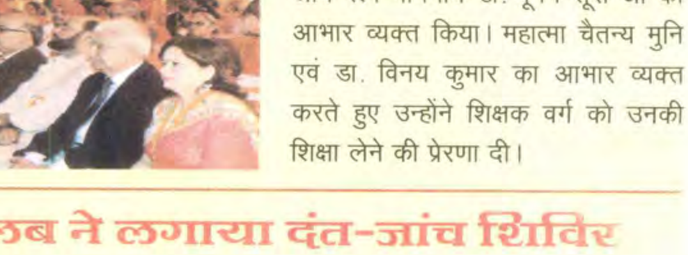

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **पूनम सूरी**

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 29 नवम्बर, 2015 से 05 दिसम्बर, 2015

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● **(अग्ने)** हे यज्ञाग्नि! **(एताः)** ये **(ते)** तेरे लिए **(समिधः)** समिधाएँ [हैं], [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [ब्रह्मचारियों] में **(आयुः)** जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए **(अमृतत्वम्)** अमरत्व **(धेहि)** प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूंगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि महर्षि दयानन्द ने वास्तविकता को समाज के समक्ष रखा। अति का मार्ग छोड़कर सत्य मार्ग अपनाते हुए कहा–ईश्वर भी है, प्रकृति भी है। प्रकृति सत् है, आत्मा सत्‌चित है और ईश्वर सत–चित और आनन्द है।

स्वामी जी ने कहा "जब आत्मा मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता है उसी समय जीव की इच्छा–ज्ञान आदि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं, उसकी आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, निश्शंकता और आनन्द उत्साह उठता है ईश्वर हमें प्रतिक्षण प्रेरणा देता रहता है। हर समय सावधान करता है। हर समय उसकी आवाज आती है "रुक जाओ! आगे न बढ़ो, खतरा है"

अब आगे...

पाँचवाँ दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

परसों वासना की बात बताई थी, कल भी बताई, आज फिर एक सज्जन को शंका हो गई है। वे पूछते हैं कि वासना के बिना कर्म कैसे हो सकता है? प्रतीत होता है कि वासना का झगड़ा सरलता से समाप्त नहीं होता। वासना के बिना कर्म का अर्थ है निष्काम कर्म। ये भाई पूछना चाहते हैं कि निष्काम कर्म कैसे हो सकता है? कोई न–कोई इच्छा तो कर्म के साथ रहती ही है, फिर वासना से छुटकारा कैसे मिले?

परन्तु सुनिए, निष्काम कर्म भी होता है संसार में। वासना के बिना कर्म से संसार चलता भी है। ऐसे कर्म से जीवन भी चलता है। जीवन दो प्रकार का है–एक Objective अर्थात् संसार के लिए, उसके भोग–विलास के लिए, उसके दृश्यों के लिए, शब्दों के लिए, गन्धों के लिए; दूसरा Subjective अर्थात् आत्मा के लिए। ऐसी बातों के लिए जिनसे आत्मा का उत्थान और भला होता है। पहले प्रकार का जीवन वह है जिसमें व्यक्ति संसार के जंजाल से भी ऊपर नहीं उठ पाता। प्रातः से शाम तक, सायं से प्रातः तक एक ही चिन्ता रहती है उसे कि धन को किस प्रकार इकट्ठा करे। शक्ति चाहिए, शासन चाहिए, मकान चाहिए, सम्पत्ति चाहिए, सन्तान चाहिए, धन चाहिए, फिर और धन चाहिए, तब और चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य फँसा रहता है। देखता नहीं कि प्रतिदिन लोग मर रहे हैं। देखता नहीं कि–

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
इक सिहासन चढ़ चले एक बँधे जात जंजीर।।
माटी कहे कुम्हार को, क्या तू रूँधे मोय।
इक दिन ऐसा आएगा, मैं रूँधूँगी तोय।।
इक दिन ऐसा आएगा, कोउ कोऊ को नाहिं।
घर की नारी का कहे, तन की नारी नाहिं।।
माली आवत देख कर, कलियाँ करें पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।
कबिरा रसरी पाँव में, का सोवे सुख चैन।
साँस नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन।।
दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहने को अचरज महा, जाए अचम्भा कौन।।

यह सब–कुछ वे देखते हैं परन्तु देखकर भी कुछ नहीं देखते। इस संसार को इकट्ठा करने का यत्न करते हैं, जो कभी किसी के साथ गया नहीं। इसके लिए पाप करते हैं, बेईमानी करते है, रिश्वत लेते हैं, ब्लैक मार्किट करते है, खाने–पीने की वस्तुओं में मिलावट करते हैं, देश के साथ द्रोह करते हैं, देश की एकता को मिटाने के लिए ऐसे कार्य करते हैं जो अमेरिका वाले चहाते हैं। निर्बल और दुर्बल पर अत्याचार भी किये जाते हैं। यह सब–कुछ इस विश्वास के साथ कि यह शक्ति, यह शासन, धन और सम्पत्ति, पत्नी और बच्चे, सबको साथ ले जाएँगे; परन्तु साथ तो कुछ जाता नहीं। एक दिन संग्रह करने वाला ही रिक्त हस्त चला जाता है। कोई गठरी बाँधकर कुछ भी साथ नहीं ले जाता। हाँ, केवल आँसू उसके नेत्रों में भरे रहते हैं; केवल पाप उसके साथ जाता है। यह है एक प्रकार का जीवन। दूसरे प्रकार का जीवन वह है जिसमें मनुष्य कर्म करता है तो कर्त्तव्य की भावना से। इस विश्वास के साथ कि सब–कुछ यहीं रह जाता है। इसके लिए पाप नहीं करूँगा। अन्याय नहीं करूँगा। किसी को कष्ट नहीं दूँगा। ऐसा व्यक्ति नौकरी करता है तो रिश्वत नहीं लेता; दुकानदारी करता है तो ब्लैक मार्किट नहीं करता; देश का लीडर है तो देश के साथ विश्वास घात नहीं करता। कोई भी काम करे, उसे करते समय यह नहीं भूलता कि मैं आत्मा हूँ। इस प्रकार आत्मभाव से किया हुआ कर्म बन्धन को पैदा नहीं करता। उससे कोई वासना नहीं बनती। जब वासना नहीं बनती तो आवागमन का चक्र भी नहीं बनता।

यह है निष्काम कर्म। यह है वह काम जो वासना के बिना होता है। परन्तु अब वासना को छोड़िए, उस भक्त की पुकार सुनिए

जिसका वर्णन मैं कल कर रहा था, जिसने ऋग्वेद के (7.8.6.7.) मन्त्र में कहा है–

महाराज! मुझे दोषों का पता लग गया। अब मैं तेरे गीत गा रहा हूँ–ये सुन्दर मनमोहने गीत। अब कृपा कर, ताकि ये गीत मेरे हृदय में बैठ जाएँ। फूलों की सुगन्ध जैसे वस्त्रों में बस जाती है, वैसे ये गीत मेरे अंदर बस जाएँ, और कृपा कर ताकि इन गीतों को गाता–गाता मैं तुझसे मिल जाऊँ।

योग का अर्थ है मिलाप। इसी मिलाप की चाहना करता है यह भक्त। यजुर्वेद में इसी मिलाप का वर्णन करते हुए कहा–"तेरे साथ मेरा मिलना कड़वा न हो जाए। तेरे साथ मेरी मित्रता बूढ़ी न हो जाए।"

परन्तु इस मिलाप का साधन क्या है ? जिसे हम मिलना चाहते हैं वह कहीं दूर तो है नहीं। गुरु नानक जी ने बड़ा सुन्दर कहा है कि–

पुष्प मध्य ज्यूँ बास बसत है,
मुकर माँहि ज्यूँ छाई।
तेरे तुम में हरि बसत है,
घट ही खोजो भाई।।

हमारे चहुँ ओर है वह ऊपर वह है, नीचे वह है, भीतर वह है, बाहर वह है। हमारी दशा उस मनुष्य की भाँति है जो पानी के बीच में खड़ा हो और चिल्लाता जाता हो कि मुझे प्यास लगी है।

पानी हर तरफ, पीने को एक बूँद नहीं। जल के आर–पार–वार में मीन प्यासी घूम रही है। परन्तु पानी का अर्थ केवल पानी नहीं, ईश्वर भी है। हर तरफ आनन्द का वह भण्डार विराजमान है। उसके भीतर हम बैठते हैं, उसके अन्दर लेटते हैं, सोते हैं, जागते हैं और उसी के बिना प्यास से बेचैन हुए जाते हैं। परन्तु ऐसा होता क्यों है? केवल इसलिए कि प्यास की अग्नि नहीं जली। जब प्रीतम के प्रेम की आग प्रज्ज्वलित होगी, जब उससे मिलने को मन तड़प उठेगा, जब उसके बिना सब बेसूद, बेरस, व्यर्थ प्रतीत होने लगेगा, तब उस निर्जल वायु में, सूखे होठों की प्यास बुझाने के लिए आँसुओं का पानी जाग उठेगा। यही प्रकृति का नियम है– जब गर्मी बहुत होती है, तब वर्षा आती है। वर्षा आए तो वायु में फैली हुई धूल स्वच्छ हो जाती है, मल दूर हो जाता है, निर्मलता जाग उठती है। इसलिए जब प्रीतम के वियोग में आँसू बहें तो घबराओ नहीं। ये आँसू तुम्हारी सफलता का पहला चिह्न हैं। ये तुम्हारे मन की मैल को धो देंगे और मैल के धुल जाने पर वह प्रीतम स्वयं मुस्कराता हुआ दिखाई देगा जो तुम्हारे भीतर और बाहर है, ऊपर और नीचे हैं, चहुँ ओर है। ईश्वर पाषाणहृदय नहीं है, निर्दयी नहीं, वह तो अनन्त दया का भण्डार है। प्यार की अग्नि जब प्रज्वलित हो जाती है, वियोग की गर्मी जब जलाने लगती है और उस गर्मी के कारण जब उमड़ते बादलों की भाँति आँसू बरसने लगते हैं तब वह अतिशय सुन्दर, मनमोहन, प्रीतम स्वयं आगे बढ़कर कहता है, "आओ मेरे भक्त! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गङ्गा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर।।

परन्तु भक्त कहीं गया नहीं भगवान् भी कहीं गए नहीं। दोनों पहले भी यहीं थे। यह ज्ञान भी था कि ईश्वर हर तरफ, प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक वस्तु में है। यह भी पता था कि मनुष्य के शरीर को, संसार के शरीर को, सृष्टि के शरीर को वह परम पिता परमात्मा अपनी अनन्त शक्ति से चला रहा है।

तब प्रभु प्रतीक्षा किसकी कर रहे थे ? केवल इस बात की कि भक्त के हृदय में ज्वाला जल उठे। परन्तु यह प्यार अकेला तो कुछ नहीं करता। अकेला ज्ञान भी कुछ नहीं करता। अकेला ज्ञान उस मशीन की भाँति है जिसे तेल नहीं दिया गया। चलते ही यह मशीन टूट जाएगी, विनाश जाग उठेगा। अकेला प्यार उस तेल की भाँति है जो मशीन से दूर पड़ा है। इससे भी कुछ होगा नहीं, अन्धकार छा जाएगा हर तरफ। कोरा शुष्क ज्ञान व्यर्थ है; कोरा प्रेम अँधेरे में चिल्लाती हुई पुकार की भाँति है। दोनों जब मिलते हैं तब वह अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें भगवान् आगे बढ़कर कहते हैं–"आओ मेरे भक्त! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

इसी बात को 'अथर्ववेद' के दसवें काण्ड में बहुत सुन्दरता से कहा गया है–

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शोषतः।।

यह महान् प्रजापति मनुष्य की बुद्धि को उसके हृदय के साथ सीकर, माथे से ऊपर, सिर से भी ऊपर प्राणरूप होकर प्रत्येक वस्तु को चलाता है, गति देता है।

इस सी देने का अर्थ क्या है ? – मनुष्य के शरीर में हृदय और मस्तिष्क स्थूल नाड़ियों से आपस में जुड़े हुए हैं। परन्तु सी देने का अर्थ केवल जोड़ देना नहीं। मस्तिष्क में तर्क रहता है, ज्ञान रहता है; हृदय में श्रद्धा का और प्यार का निवास रहता है। वह महाशक्ति इस ज्ञान और प्यार को मिलाकर प्राणरूप होकर सारे संसार को चला रही है। इसका पता तब चलता है जब मस्तिष्क में बैठा हुआ ज्ञान और हृदय में बैठा हुआ प्यार दोनों एक हो जाते हैं।

नवयुवक श्री मुन्शीराम महर्षि दयानन्द के पास गए, बोले, "मैं ईश्वर को नहीं मानता, आप बताइए कि ईश्वर क्या है?" महर्षि ने अपना विस्तृत ज्ञान उसके समक्ष रख दिया, उसकी प्रत्येक युक्ति का उत्तर दे दिया, उसे निरुत्तर कर दिया। लाला मुन्शीराम बोले, "महर्षि ! मेरा मस्तिष्क तो मान गया है परन्तु मेरा हृदय नहीं मानता।" महर्षि हँसते हुए बोले, "हृदय भी मान जाएगा मुन्शीराम ! उसमें प्यार की ज्वाला जलेगी तो श्रद्धा की ज्योति जाग उठेगी।" और अन्त में यह ज्योति जगी। यही अवस्था पंडित गुरुदत्त की हुई। वे भी नास्तिक थे, परन्तु गुरुदत्त के लिए यह ज्योति जगी उस समय, जब ऋषि अन्तिम साँस ले रहे थे। उन्होंने देखा कि महर्षि अपने शरीर के अन्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। फोड़ों ने शरीर को दर्द की छावनी बना दिया है। देखा कि इस भयानक दर्द के होते हुए भी महर्षि इस प्रकार शान्त हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो। इस प्रकार मुस्करा रहे हैं जैसे मृत्यु नहीं, अपितु अनन्त प्रसन्नता उनके निकट आ रही है। उस समय उनके हृदय का द्वार खुल गया ; वह श्रद्धा जाग उठी जो कोरे ज्ञान से, युक्ति और तर्क से कभी जागती नहीं। ऐसा प्रतीत हुआ गुरुदत्त को कि जिस महाशक्ति को वे खोजते फिरते थे, वह उनके सामने खड़ी है; हाथ फैलाये कह रही है–"आओ मेरे भक्त! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

शेष अगले अंक में....

ईश्वर की महिमा अपरम्पार है

● **श्री हरिश्चन्द्र वर्मा**

जब कुछ नहीं था तब सूर्य अग्नि के न रहने से सारा विश्व कुहासा से अच्छादित अन्धकार तम में शीत लहरी चल रही थी, और प्रकृति के परमाणु जड़ होने से स्वयं तो कुछ बन नहीं सकते थे। ऐसी परिस्थिति में 'सर्वव्यापक प्राण के समान सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ सर्वगुणों से सम्पन्न परमेश्वर के अलावा दूसरी कोई भी उससे बढ़कर आदि शक्ति नहीं थी। इसलिए उसी की 'ऋतु' परिवर्तन शक्ति द्वारा 'सत' के अद्रव्यमान परमाणुओं को अपनी विशेष कण की शक्ति से दृव्यमान बनाकर उनसे 'हिरण्यगर्भ' को उत्पन्न किया, जिसमें तेज वाले लोक उत्पन्न होकर 'सविता' देव से सूर्य का अस्तित्व कायम हुआ। साथ ही किंचित 'सत' एवं रज, तथा 'तम' प्रधान परमाणुओं से सर्वप्रथम इस पृथिवी–भूमि की उत्पत्ति की, उसके पश्चात 'रज' और अन्य परमाणुओं के समूहों से चन्द एवं अन्य लोकों की इस सौर जगत् में उत्पन्न कर दिया।

इन लोकों में पृथिवी की उत्पति सर्वप्रथम वर्ष अरबों वर्ष पहले ही हो गई थी, तभी तो इसके पाँचो तत्व (तीन भाग सागर से घिरा हुआ एक भाग भूमि, वनस्पतियों सें) जीवन उपयोगी बन गई। अतः परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप इसलिए कहा जाता है कि उसकी हर प्राकृतिक रचना विज्ञान संगत है।

अरबो वर्ष पहले के 'कण' को आजजिन वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है और जिन्हें अभी नहीं जानते, उन सभी को ईश्वर जानता है, तभी तो अदृव्यमान परमाणुओं को दृव्यमान बनाकर उनके समुहों से अपनी महान नियम शक्तियों द्वारा सारे ब्रह्माण्ड की रचना की थी और अभी भी कहीं हो रही होगी।

परमेश्वर की बड़ी कृपा है, जिन्होने इस विश्व को स्वर्ग जैसा 'प्राणों से युक्त करके प्राणी जगत से पूर्ण, सत्यम् शिवम और सुन्दरम् बना दिया।

ईश्वर की सर्वोत्तम रचना नारी और पुरुष हैं। इनके भोग्य पदार्थ के लिये वनस्पतियों से लेकर पंचतत्व एवं उनके शरीर में किसी अंगो 'लिंग और पुल्लिंग की रचनाओं में कोई कमी नहीं रखी। इन सभी को अमैथुनी उत्पत्ति काल के पश्चात स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त हुआ था। पर जिस शक्ति ने मानव एवं अन्य प्राणियों के लिए जीवन उपयोगी पाँच सूक्ष्म भूतों से पाँच महाभूत, और पाँच प्राण, पाँच सूक्ष्म भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि इन सत्रह तत्वों के समुदाय से 'सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर से जिन्होंने सारे प्राणियों के शरीर को रचा और जिसने प्राणियों में सर्वोत्तम मानव को उत्पन्न किया, वही देव यदि पशु–पक्षी जैसा उसे भी स्वाभाविक ज्ञान में ही रखता, तो ईश्वर की सर्वज्ञता का कोई विश्वास नहीं करता। इसलिए जो मानव में महामानव थे उन्हीं (अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा) को उनके ध्यान, योग, तपस्या से (ऋक, यजुः, साम और अथर्व) वेद विद्या के साथ वैदिक भाषा का भी ज्ञान प्राप्त होने लगा, जिसे ऋषि भाषा भी कहा जाता है।

उसी करोड़ो वर्ष से नैमितिक ज्ञान, आचार–विचार और सभ्यता, उन ऋषियों के सम्पर्क में रहने वालों को प्राप्त होने लगा। साथ ही जिन युवा–युवती का प्रेम हो जाता था, उन्हे पति–पत्नी कहा जाने लगा। जन्म दायी,दाता को माता और पिता, इस प्रकार भाई, बहन आदि के रिश्ते–नाते वेद से ही ऋषियों ने बनाया। उस समय के वेद एवं मंत्र आज भी विद्यमान है, यथा–'अनुव्रतः पितु–पुत्रो, माता भवतु सम्मनाः। जायापत्ये मधुमतीं वाचंवदतु शान्ति वाभ।। (अथर्व का . 3स. 30, मं.2) परिवार में माता–पिता, भाई–बहिन, पुत्र–पुत्री आदि सम्बन्ध से जीवन यापन करना होता हैं प्रत्येक व्यक्ति परिवार में अनेक सम्बन्धों से युक्त होता है। तात्पर्य यह कि वेदोत्पति काल के पश्चात मानसरोवर आदि स्थानों में रहने वाले जब आर्य और ऋषि गुणों के सुझाव का ज्ञान और सभ्यता, अनार्य, दस्यु और शिकारियों ने अच्छे गुणों को न मानकर लड़ाई झगड़ा करने लगे तब ऋषि और आर्यगण, इसी भूमि खण्ड में आकार बसे तभी से इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ और इसे अन्न,फलादि से उपजाऊ बनाकर मार्गो का विकास किया। इसके अलावा गंगा, यमुना, सरस्वती और ब्रह्मपुत्र आदि नदियों के नाम करण आर्यावर्त देश के ऋषियों ने ही किया था और श्रुत ऋषियों, महात्माओं एवं आर्यो के जो नाम करण किये जाते थे वे सब वेदों में आये हुए वेदों के नाम से ही लिए जाते थे। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, सविता विश्वामित्र वशिष्ठ,

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

वसोर्धारामन्त्रः

● पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।। यजु. 1/3

परम पिता परमात्मा का उपदेश है– हे मनुष्य! (वसोः)

यज्ञो वै वसुः।। शतपथ 1/7/1/9,14

यहा पर वसु का अर्थ है। 'वासयति इति' व्युत्पत्ति से यह ठीक भी है क्योंकि यज्ञ ही बसाता है। यज्ञ के अभाव में नाश ही नाश है–

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः।।

यज्ञहीन का न यह लोक है, न परलोक। वस्तुत इस यज्ञ के द्वारा ही मनुष्य के जीवन का सुन्दर निर्माण होता है।

यज्ञ से (पवित्रम् असि) तूने स्वय को पवित्र बनाया है। (शतधारम्) (शत धारा यस्मिनधारा इति वाङ्नाम) जिस यज्ञ द्वारा पवित्रीकरण की क्रिया में शतशः वेदवाणियों का उच्चारण किया गया है। सैकड़ों की क्या (सहस्रधारम्) सहस्रों वेदवाणियों का उच्चारण हुआ है। ऐसी यज्ञ की प्रक्रिया से (पवित्रम् असि) तूने अपने को पवित्र बनाया है।

आध्यात्मिक पक्ष– (सविता देवः) सबको प्रेरणा देने वाला दिव्यगुणों का भण्डार वह प्रभु (त्वा पुनातु) तुम्हें पवित्र करे।

लौकिक पक्ष– (सविता देवः) उदय होकर सबको कर्मों में प्रेरित करने वाला प्रकाशमय सूर्य (त्वा पुनातु) तुम्हें पवित्र करे अर्थात् यह सूर्य रोगकृमियों का संहार करके पवित्रता, नीरोगता एवं नवचेतना का संचार करे।

(वसोः) यज्ञ से (पवित्रेण) अपनेको पवित्र बनाने वाले (शतधारेण) शतशः वेदवाणियों का उच्चारण करने वाले पुरुष के साथ (सुप्वा) तू अपने को उत्तम प्रकार से (सु) पवित्र करने वाला (पू) हुआ है।

परमात्मा का उपदेश है कि वस्तुतः (काम) उस अवर्णनीय आनन्द देने वाली वेदवाणी को तो तूने ही (अधुक्षः) दुहा है।

वैदिक संस्कृति के अनुसार मनुष्य यज्ञमय जीवन बिताता है। इस यज्ञमय जीवन की प्रेरणा उसे शतशः, सहस्रशः उच्चारण की गई वेदवाणियों से प्राप्त होती है, जिन्हें वह अपने इस यज्ञमय जीवन में समय–समय पर प्रयुक्त करता है।

विचारणीय शब्द शतधारम् एवं सहस्रधारम्–

'शत' का अर्थ– सौ तथा असंख्य है।

(संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृष्ठ–1133)

इस आधार पर अर्थ हुआ– सौ धाराएं अथवा असंख्य धाराएं अर्थात् जिनकी गिनती ही नहीं की गई। जब धाराओं की गिनती ही नहीं की गई तो उस पर टीका–टिप्पणी करना ही व्यर्थ है।

'सहस्र' का अर्थ हजार एवं बहुसंख्य है। (सं. श. कौ. पृ. 1243)

सहस्र का अर्थ हुआ– बहुत सी धाराएं। यहा पर भी कोई निश्चित संख्या नहीं है। बस बहुत सी धाराएं हैं।

इससे भी सिद्ध होता है कि धाराओं का एक समूह बना कर अर्थात् बड़ी मोटी धार बनाकर घी डालें। जब छोटे चम्मच से घी डालते है तो छोटी अर्थात् पतली धार बनती है। जब घृतपात्र से डालेंगे तो स्वभावतः बड़ी अर्थात् मोटी धार बनेगी।

अलग–अलग धाराएं बनाना अथवा उनकी सौ और हजार की गणना करना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं। अपितु असंख्य तथा बहुसंख्य अर्थ करना ही उपयुक्त है।

अनेक याज्ञिक विद्वान् 'शतधारम्' और 'सहस्रधारम्' शब्दों के आधार पर खड़े होकर छानने में से घृत की धारा डलवाते हैं। परन्तु उस छानने से भी सौ धाराएं नहीं बन पातीं। अपितु वे सभी मिलकर एक बड़ी धारा में परिवर्तित हो जाती हैं, फिर हजार धाराओं की बात ही क्या है? अतः इस प्रकार की पद्धति अनौचित्यपूर्ण और अप्रशस्य है। सौ या हजार धाराओं की कल्पना करके आहुति देना और दिलवाना कल्पनालोक में विचरण करना ही है।

शतधारम् तथा सहस्रधारम् का समास विग्रह

शतशः धाराणां समाहारः = शतधारम्।
सहस्रशः धाराणां समाहारः = सहस्रधारम्।

इस प्रकार यह दोनों शब्द समूहवाचक हैं। सौ अथवा हजार के निश्चित संख्यावाची नहीं अपितु सैंकड़ों और हजारों के समूह के बोधक हैं।

अतः जो याज्ञिक इस मन्त्र से आहुति देना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि यज्ञान्त में जिस पात्र में घी है उसी पात्र से खड़े होकर अथवा बैठे–बैठे ही हाथ ऊँचा करके वसोर्धारा मन्त्र का उच्चारण करते हुए धार बनाकर घृतपात्र का सारा घी समर्पित कर दें।

खड़े होकर, हाथ ऊँचा करके घी डालने का अभिप्राय यही है कि हाथ को आँच न लगे। क्योंकि घी की धार बड़ी होने से अग्नि तीव्रता से प्रदीप्त हो जाती है, जिससे हाथ जलने का डर रहता है। यदि घृतपात्र में थोड़ा ही घी बचा है तो बैठे–बैठे ही धार बनाकर डाल सकते हैं। यह सुविधा पर निर्भर है। बात का बतगड़ बनाने में कोई औचित्य नहीं।

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार–

घृत की अन्तिम बड़ी आहुति वसोर्धारा है। घृत अर्थात् स्नेह– सौजन्य। घृत की धारा अर्पित करते हुए यही कामना की जाती है कि सभी मनुष्यों में परस्पर स्नेह–सौजन्य की धारा निरन्तर बहती रहे।

वसोर्धारा में अविच्छिन्न धारा प्रवाहित की जाती है और अधिक घृत होमा जाता है। इसका उद्देश्य यही है कि **शुभकार्यों के आरम्भ में जितना उत्साह होता है, अन्त में उससे भी कहीं अधिक होना चाहिए।**

प्रायः शुभकार्यों के आरम्भ में लोग बहुत साहस, उत्साह और त्याग दिखाते हैं परन्तु बाद में ढीले पड़ जाते हैं। इसके विपरीत मनस्वी लोगों की रीति दूसरी ही है। यदि वे धर्म मार्ग पर कदम बढ़ा देते हैं तो हर कदम पर तेज़ी का परिचय देते हैं और याज्ञिक कर्म में अत्यधिक तन्मय हो जाते हैं। ठीक ही कहा है–

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्।।

लक्षित कार्य को सिद्ध करने वाला मनस्वी व्यक्ति दुःख या सुख की परवाह नहीं करता।

4–E, कैलाश नगर,
फाजिल्का, पंजाब
मो. 9463428299

कर्मयोगी : स्वामी सुमेधानन्दजी

● महात्मा चैतन्यमुनि

पूज्य स्वामी सुमेधानन्दजी के निधन से आर्यजगत् में जो स्थान रिक्त हुआ है उसका भर पाना असंभव सा ही लगता है। स्वामीजी का जन्म 5 मई, 1937 में हुआ था 5 अगस्त, 2015 को उन्होंने इस नश्वर देह का त्याग कर दिया। हमारा उनके साथ बहुत ही समीप का सम्बन्ध रहा है, बल्कि यदि कहें कि हमारे लिए वे किसी परिवार के सदस्य जैसे थे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने हमें अपने जीवन की पूरी कहानी अनेक बार सुनाई कि किस प्रकार उनके मन में वैराग्य के भाव पैदा हुए और यह गोपाल नामक युवा कहाँ–कहाँ, कैसे–कैसे अनेक कठिनाईयों का समाना करते हुए अन्ततः दयानन्द मठ दीनानगर में पहुँचा और वहाँ वे क्या–क्या कार्य करते थे.... आदि। सन् 1970 में अपने जीवन के 33वें वर्ष में महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस पर उन्होंने स्वामी सर्वानन्दजी से संन्यास लिया और उनकी इच्छा पूरी करने के लिए चम्बा के उस एकान्त तथा उबड़–खाबड़ स्थान पर पहुँचे जहाँ आज दयानन्द मठ चम्बा स्थित है। उन्होंने तथा आचार्य महावीरजी ने बहुत ही कठोर परिश्रम करके उस स्थान को समृद्धि प्रदान की है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे आर्यप्रतिनिधि सभा में सबसे अधिक समय तक महामन्त्री के रूप में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आर्यवन्दना के सम्पादन से भी मैं लगभग 26 वर्ष तक निरन्तर जुड़ा रहा। इस दौरान अनेक प्रधानों के साथ कार्य करने का अवसर मिला तथा सभी का अपने–अपने ढंग से सभा को सहयोग रहा मगर स्वामीजी के साथ मुझे सबसे अधिक समय कार्य करने के लिए मिला है। उनमें कार्य करने की अद्भुत क्षमता ही नहीं थी बल्कि संगठन को किस प्रकार से मजबूत किया जा सकता है, यह कला भी उनके पास विद्यमान थी। वे अपने अंतिम समय तक अत्यधिक आशावादी दिखते थे, भले ही उन योजनाओं को वे किन्हीं कारणों से कार्यन्वित न कर पाएँ हों मगर उनके पास एक स्पष्ट विजन था। जब उनकी अत्यधिक अस्वस्थता का पता चला तो मैं व सत्यप्रिया यतिजी एक मई को उनसे मिलने चम्बा पहुँचे। उस समय भी उनमें वही उत्साह और उमंग दिखाई दी थी। हम देर रात तक अपने संस्मरणों को दोहराते रहे थे....भले ही वे वर्तमान सभाओं के स्तर व संगठनादि को लेकर अन्य विशुद्ध ऋषिभक्तों की तरह बहुत चिन्तित थे मगर फिर भी बहुत आशान्वित भी थे कि कभी न कभी पुनः हमारा संगठन मजबूत होगा जब असली दयानन्दियों के हाथ में बागडोर आएगी.... और भी उन्होंने उस दिन बहुत सी बातें कही थीं.....

6 अगस्त को प्रातःकाल जब महावीरजी का फोन आया कि स्वामीजी गत रात लगभग पौने दस बजे चल बसे तो अपने कानों पर जैसे विश्वास नहीं हुआ मगर यह सत्य था कि स्वामीजी अब इस दुनियाँ में नहीं रहे....वे अधिकतम हमारे यहाँ ही ठहरते थे तथा उनके साथ इतने अधिक संस्मरण है कि यहाँ दे पाना असंभव सा ही है.... हाँ अपनी आत्मकथा में कुछ संस्मरणों को देने का प्रयास करूँगा। चम्बा में 8 अगस्त को आयोजित उनकी श्रद्धांजलि सभा में बोलने के लिए खड़ा हुआ तो उनके साथ बिताया समय एकदम आँखों के समाने उभर आया। स्वामीजी ने न केवल हिमाचल प्रदेश सभा के लिए बल्कि समूचे आर्यजगत् के लिए बहुत कार्य किया है जिसके लिए उन्हें सदा ही स्मरण किया जाता रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि पुरानी पीढ़ी के आर्यों की तरह अपने स्वार्थों एवं एषणाओं से ऊपर उठकर मन, वचन व कर्म से अपने मिशन के लिए कार्य करें.... उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी....

वैदिक वशिष्ठ आश्रम,
महादेव, सुन्दरनगर,
जिला मण्डी (हि.प्र.)

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–पुरुषार्थ–चतुष्ट्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। इसमें 'काम' से क्या अभिप्राय है? क्या मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रारंभ के तीन पुरुषार्थ साधने आवश्यक हैं?

समाधान–'काम' का मतलब है –अपनी आवश्यताओं की पूर्ति करना। 'धर्म' है–वेद के अनुसार आचरण करना। 'अर्थ' है–वेदानुसार आचरण करके धनादि प्राप्त करना यानि ईमानदारी और मेहनत से धन कमाना।' और उससे खाना–पीना, रोटी–कपड़ा, मकान आदि का प्रबंध करना 'काम' है। जब धर्म, अर्थ और काम, ये तीनों चीजें सिद्ध हो जाएँगी, तब उसके बाद ही 'मोक्ष' मिलेगा। जो व्यक्ति 'धर्म' का आचरण नहीं करता, वो 'अर्थ' नहीं प्राप्त कर सकता, वो काम की पूर्ति भी नहीं कर सकता और उसको 'मोक्ष' भी नहीं मिल पाएगा। जो ये तीन ठीक कर लेगा, उसका मोक्ष भी हो जाएगा।

शंका–द्रौपदी का चीरहरण चुपचाप देखते रहना, क्या भीष्मपितामह जैसे महान व्यक्ति की कमज़ोरी नहीं दर्शाता? कहते हैं, कि कौरवों का अन्न खाने से उनकी बुद्धि मलीन हो गई थी। हम भी इतना दूषित भोजन खाते हैं, तो क्या हमारी बुद्धि भी मलीन हो गई है। फिर योग धर्म कैसे असर करेगा?

समाधान– 'महाभारत' में नौ सौ प्रतिशत मिलावट है। जैसे एक आदमी ने दस हजार रुपए घर से लेकर के व्यापार किया। और उसने कुल मिलाकर के एक लाख रुपए कमाए। उसने नौ सौ प्रतिशत लाभ कमाया। महभारत की स्थिति भी ऐसी ही है। उसमें मूल श्लोक केवल दस हजार थे। व्यास जी ने जब महाभारत का इतिहास लिखा था तब इसका नाम था–जय। फिर बाद में हुआ–'भारत'। तब इसका नाम 'महाभरत नहीं था। चीन का इतिहास 'चायना' के नाम से प्रस्तुत है। जापान का इतिहास 'जापान' के नाम से और भारत का इतिहास –'भारत' के नाम से। तो पहले जब मूल रुप से इतिहास लिखा था तब उसमें केवल 10,000 श्लोक थे। और बाद में जब इतिहास की कथा होने लगी। तो कुछ दो, चार, पाँच, दस पंडितों ने अपनी कथाएँ शुरु कीं और दो श्लोक एक ने डाले, दो दूसरे ने डाले, दो तीसरे ने डाले और वो बढ़ते–बढ़ते आज एक लाख श्लोक हो गए। तो कितनी मिलावट हुई, नौ सौ प्रतिशत। 90 हजार मनगढ़त श्लोक इसमें जोड़ दिए गए। अब जो घटना आती है, कि द्रौपदी का चीर हरण हुआ। हमको तो यह सरासर मिलावट दिखती है, ऐसा कुछ हुआ नहीं। ऐसा हो भी नहीं सकता।

यह बेकार की बात पढ़ते हैं, लिखते हैं और टीवी सीरियल में भी दिखा दिया इन्होंने। सब झूठ बाते हैं। आप कल्पना तो करके देखिए, कि क्या ऐसा हो सकता है। आपके मोहल्ले में, आपकी नजर में एक सामान्य स्तर का व्यक्ति ऑटो–रिक्शा चलाता हैं। पाँचवी–छटी कक्षा पढ़ा हुआ है। कल्पना कीजिए–उसकी पत्नी को कोई आदमी पकड़ ले, और उसके कपड़े खींचने लगे तो क्या वो देखता रहेगा? वो लड़ मरेगा। वो कहेगा–पहले मुझसे बात करो, बाद में इसको हाथ लगाना। मेरे जिन्दा रहते तुम इसको हाथ नहीं लगा सकते। इसकी रक्षा की जिम्मेदारी मैंने ली है। पहले मुझसे दो–दो हाथ करो बाद में इधर बात करना। तो वो पाँच–पांडव बड़े राजा लोग थे। बड़े वीर धनुर्धारी, बड़े पहलवान, कितने विद्वान और कितने मल्ल स्तर के लोग थे भीम जैसे, अर्जुन जैसे। वो क्या मुँह देखते होंगे? कल्पना तो करके देखो, कितनी झूठ बात है। एक रिक्शा ड्राईवर भी ऐसी बात को सहन नहीं कर सकता, कि कोई उसकी पत्नी को हाथ लगाए। वो पाँच बड़े पढ़े–लिखे, बलवान, योद्धा महापुरुष कैसे सहन करेंगे, कि उनके देखते–देखते कोई उनकी घर की स्त्री को हाथ लगाए। इसलिए चीरहरण तो बिल्कुल कोरी कल्पना है। यह जुआ खेलने की घटना में भी घोटाला है। बहुत कपोल कल्पनाएँ हैं। जुआ में रुपया हार जाए, जमीन हार जाए, तो बात कुछ समझ में आती है। लेकिन पत्नी को हार जाए। दिमाग में बैठता नहीं है। पत्नी जुए में दाव पर लगायी जाती है क्या? वो कोई संपत्ति है, कोई जड़ संपत्ति है, कोई सोना–चाँदी है? वो चेतन व्यक्ति है। चेतन व्यक्ति को कोई भी जुए में दाँव पर नहीं लगा सकता। कानून का नियम है। महाभारत में इतनी मिलावट है, जैसे एक किलो दाल में नौ किलो कंकड़। असली दाल ढूँढने में कितनी मेहनत करनी पड़ेगी। दो–चार मिनट में फैसला नहीं होगा। घर बैठकर के रिसर्च करनी पड़ेगी। तब पता लगेगा। ये सब बातें काल्पनिक हैं, झूठ बाते हैं। इसलिए इन्हें बुद्धि स्वीकार नहीं करती।

अगला प्रश्न है, कि 'भीष्म, दुर्योधन का अन्न खाते थे, जिससे बुद्धि भ्रष्ट हो गई। इसलिए उसका विरोध नहीं कर पाए। हम भी तो दूषित अन्न खा रहे हैं, तो हमारी बुद्धि पर योग का असर कैसे होगा? उसका उत्तर यह है, कि यदि हम अच्छा अन्न खाएँगे, अच्छी मेहनत से कमाएँगे, ईमानदारी से कमाएँगे और शुद्ध भोजन खाएँगे। माँस–अण्डे आदि नहीं खाएँगे, सात्विक भोजन खाएँगे, तो योग का असर होगा। जितना पुरुषार्थ करेंगे, उतना लाभ होगा।

शंका–"जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन। जैसा पिए पानी, वैसी बने वाणी। जैसा करे संग, वैसा चढ़े रंग।" तो मित्रों के, रिश्तेदारों आदि के घर में भ्रष्टाचार का धन आता है और वहाँ जाना ही होता है। वहाँ का अन्न, पानी ग्रहण न करने पर संबंध बिगड़ते हैं। और यदि स्वीकार करेंगे, तो मन बिगड़ेगा। बताइए क्या करना चाहिए?

समाधान– आपके मित्र–संबंधी, रिश्तेदार जिनके बारे में आपने यह प्रश्न लिखा है, कि वो चोरी से, बेईमानी से, भ्रष्टाचार से धन कमाते हैं? क्या वो सारा सौ प्रतिशत धन चोरी, बेईमानी से कमाते हैं या फिर कुछ मेहनत, ईमानदारी से भी कमाते हैं। कुछ तो मेहनत से कमाते हैं, कुछ तो ईमानदारी का होता है। मित्रों के यहाँ और रिश्तेदारी में, आना–जाना, खाना–पीना सब कुछ करना पड़ता है। तो जब आपको वहाँ खाना–पीना पड़े तो उनकी जो मेहनत और ईमानदारी की कमाई है, उसमें से खा लेना। बेईमानी वाला छोड़ देना, वो मत खाना। आपका मन भी नहीं बिगड़ेगा और रिश्ता भी नहीं बिगड़ेगा, दोनों ठीक बने रहेंगे। समाधान तो यही है।

इसे और स्पष्ट समझने के लिये एक अन्य उदाहरण देता हूँ। एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा–'सेठ लोगों का धन कुछ ईमानदारी का और कुछ बेईमानी का (मिला–जुला) होता है। अतः उन सेठों से दान लेना उचित है? मैंने कहा–'हाँ, दान लेना चाहिए। दान देना एक पुण्य कर्म है। कोई सेठ पुण्य कमाना चाहे तो क्या उसे पुण्य कमाने का अधिकार नहीं है। यदि है तो वह दान देगा, और संस्था लेगी। वह व्यक्ति बोला–'सेठ का धन तो मिला–जुला है। संस्था उससे दान लेगी, तो संस्था वालों में भी बेईमानी का दोष आ जाएगा।' मैंने कहा–क्या कोई व्यक्ति अपने जीवन में सारे कर्म अच्छे ही करता है या कुछ बुरे भी करता है? यदि दोनों प्रकार के करता है तो सेठ जो दान देता है, वह अच्छा कर्म है और व्यापार में जो थोड़ी बहुत बेईमानी करता है, वह बुरा कर्म है। वह अलग कर्म है। बुरे कर्म का दण्ड उसे भोगना पड़ेगा। आप इन दोनों कर्मो को मिश्रित (मिक्स) मत करिए। सेठ कर्म करने में स्वतंत्र है। वह कुछ काम अच्छे भी करता है और कुछ बुरे भी करता है। ऐसे ही सभी लोग करते हैं। आपको पाप तो तब लगेगा, जब आप मित्रों–संबंधियों के घर जाकर उनकी वस्तुएँ चुराकर खाएँगें। तब वह बुरा कर्म होगा। यदि वे लोग प्रेमपूर्वक, श्रद्धापूर्वक आपको भोजन आदि खिलाते हैं, और आप खाते हैं, तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

दर्शन योग महाविद्यालय
साबर कांठा, रोजड़,
गुजरात।

☞ *पृष्ठ 03 का शेष*

ईश्वर की महिमा...

कश्यप, राम, सीता, वसुदेव, व्यासदेव, भीष्म, कृष्ण और अर्जुन आदि आदि।

उसके पश्चात आगे चलकर वेदों को समझने के लिये ऋषियों ने वेदांग, उपवेद, उपांग अर्थात छः ऋषियों ने छः दर्शनों को रचा। उसके बाद ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए बना। फिर उपनिषद के ग्यारह मुनियों ने ग्यारह उपनिषदों की रचना की और स्मृति ग्रन्थ वेदों में परागत ऋषियों–मुनियों की रचना हैं।

ये सब ऋषियों द्वारा बनाये गये आर्यों के साहित्य है, जिनमें वेदो से लेकर स्मृति ग्रन्थ–ईश्वर, जीव और प्रकृति का ज्ञान–विज्ञान भरा हुआ है। अतः इसी देश के साहित्य को जानने के लिये विदेशी लोग आते जाते रहे और उन्हें पण्डितों द्वारा वेदविशास्त्रों से विद्या विज्ञान का सूत्र प्राप्त होता रहा।

इधर भारत के राजाओं ने आपस में वैर विरोध, अनेकता बनाये रखे, और ब्राह्मणों को पूज्य मानकर उनके वेद विरुद्ध पुराणों के कुसंस्कार के जाल में फंसते गये और मंदिरो तथा मूर्तियों को भगवान मानकर लोग पूजते रहे, तथा रामायण का वाचन करते रहे। उस समय के उनके कुल गुरु ब्राह्मणों ने ऐसा भ्रम फैला दिया था, कि युद्ध के लिये भी मुहुर्त निकाल दिया था, इसलिये वे एक दूसरे से परास्त हो जाते थे। द्यूत, जातिभेद, कर्मगत जाति को जन्मगत बना दिया गया, पितरदान प्रथा, पितरपक्ष प्रथा। तीर्थ करने एवं गंगा स्नान से मुक्ति, ब्राह्मणों को पूज्य मानना। आज विज्ञान के युग में भी लोग उनके जाल में फंसे हुए हैं। उन्होने भी एक आविष्कार कर दिया है जो 60 वर्ष पहले नही था 'मांगलिक दोष, यदि लड़की अथवा लड़का मांगलिक है तो उनका विवाह

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पारलौकिक परीक्षा का पाठ्यक्रम

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

लौकिक परीक्षा हो या पारलौकिक, चिन्ता दोनो की होती हैं। तैयारी दोनों में करनी पड़ती है। लौकिक परीक्षा का निरीक्षक या नियंत्रक कोई अध्यापक होता है परन्तु पारलौकिक परीक्षा का नियंत्रक एक मात्र परमात्मा होता है। जिस प्रकार लौकिक जगत् में भिन्न–भिन्न परीक्षाओं के भिन्न–भिन्न पाठ्क्रम होते हैं उसी प्रकार पारलौकिक (आध्यात्मिक) परीक्षा का भी भिन्न पाठ्यक्रम होता है। लौकिक परीक्षा देने वाले को विद्यार्थी या परीक्षार्थी कहते हैं परन्तु पारलौकिक परीक्षा की तैयारी में जुटे व्यक्ति को साधक या तपस्वी कहते है। यदि आप स्नातक परीक्षा (बी.ए.) उत्तीर्ण करना चाहते हैं तो इस परीक्षा में प्रथम, द्वितीय और तृतीय, तीन वर्षों का पाठ्यक्रम होता है। उसी प्रकार पारलौकिक परीक्षा को भी तीन भागों में विभाजित किया गया है–मनुष्य लोक (पृथ्वी लोक), देव लोक (स्वर्गलोक) तथा मुक्तात्मा लोक।

प्रथम वर्ष : जिस प्रकार लौकिक परीक्षा में बी.ए. प्रथम वर्ष का मन्द बुद्धि परीक्षार्थी एक ही कक्षा में पड़ा रहता है तथा उसके मन में पढ़ने के लिए किसी प्रकार का उत्साह नहीं होता है उसी प्रकार पारलौकिक परीक्षा के प्रथम वर्ष (मनुष्य लोक) के पाठ्यक्रम को पढ़ने वाले साधक का साधना में मन नहीं लगता। वह सांसारिक भोग विलासों में तल्लीन रहने के कारण कई जन्मों तक एक ही मनुष्य लोक की कक्षा में भटकता रहता है। शंकराचार्य ने कहा है–पुनरपि जननं पुनरपि मरणम् ।जननी जठरे पुनरपि शयनम्।"

स्तानक परीक्षा में प्रायः तीन वर्ग होते हैं–कला वर्ग, विज्ञान वर्ग तथा वाणिज्य वर्ग। परीक्षार्थी एक ही वर्ग को लेता है। पारलौकिक परीक्षा में भी तीन मार्ग, भाक्ति मार्ग तथा कर्म मार्ग। परलोक कभी साधक किसी एक मार्ग होते हैं–ज्ञान मार्ग को अपनाता है परन्तु आवश्यकतानुसार अन्य मार्गों का भी आश्रय ले लेता है। कला वर्ग (आर्ट्स ग्रुप) का परीक्षार्थी इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, हिन्दी, संस्कृत आदि विषयों में से कुछ विषयों को चुनता है। अध्यात्म मार्ग (पारलौकिक परीक्षा) के परीक्षा साधक को भी परोपकार, कष्ट सहिष्णुता, साधना, भक्ति, करुणा आदि गुणों में अपनी प्रवीणता प्रकट करनी पड़ती है। मनुष्य लोक (प्रथम वर्ष) के पाठ्यक्रम को एक श्लोक में प्रकट किया गया है:

येषां न विद्या तपो न दानं ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः।
ते मर्त्य लोके भुविभारभूताः मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ।

अर्थात् जिनके पास विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म नहीं हैं वे मनुष्य लोक (पृथ्वी लोक) में पृथ्वी के भार स्वरूप होकर मनुष्य के रूप में पशुओं के समान विचरण करते हैं।

जिस प्रकार लौकिक परीक्षा का परीक्षार्थी निरन्तर अपने पाठ्यक्रम को दुहराता रहता है उसी प्रकार आध्यात्मिक साधना के साधक को आत्म निरीक्षण करना चाहिए कि मुझ में मनुष्य प्रवृत्ति (उच्च गुण) पनप रही है या पशु वृत्ति (अवगुण) उभर रही है:

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत् नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिर्तुल्यं किन्नु मे सत्पुरुषैरिति।।

द्वितीय वर्षः इस पाठ्यक्रम में स्वर्ग लोक या देव लोक उल्लेखनीय है। स्वर्ग लोक को प्राप्त करने के लिए यज्ञ के सोपान पर आरूढ़ होना पड़ता है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है: 'स्वर्ग कामो यजेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना के लिए यज्ञ करें। क्या है यह यज्ञ? "देवपूजा, संगति करण और दान" क्या है इसकी महत्ता? "यज्ञो वै तमं कर्म।" भूमंडल में क्या है इसका स्थान? श्रेष्ठ यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः।" यज्ञ में किनका प्रयोग किया जाता है? "इसमें वेदमंत्रों का प्रयोग किया जाता है।" यज्ञ की आत्मा क्या है ? "स्वाहा" अर्थात् समर्पण भाव ही यज्ञ की आत्मा है।" क्या संदेश देता है यह यज्ञ? "यह संदेश देना है, 'इ्दं न मम' का । अर्थात् मेरा कुछ नहीं है, जो कुछ है उस परमात्मा का ही है।" मनुष्य में ऐसा कौन सा गुण है जो पशु–पक्षियों में नहीं हैं?

"आहार निद्रा भय मैथुनं च सामातन्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हेतेषा अधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिर्समानाः।।

मनुष्य धर्म धारण करने के कारण पशु–पाक्षियों से श्रेष्ठ कहा जाना हैं।

अब आप जा सकते हैं। आपकी द्वितीय वर्ष (स्वर्गलोक) की मौखिक परीक्षा (वायवा) पूर्ण हुई।

तृतीय वर्ष : पारलौकिक परीक्षा के तृतीय वर्ष का पाठ्यक्रम अत्यन्त कठिन और दुरूह है। इस पाठ्यक्रम में मुक्ति या मोक्षधाम का विस्तृत विवेचन किया गया है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि सहायक पुस्तकों के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस परीक्षा में सौ नम्बर का एक अनिवार्य पेपर होता है जिसका नाम है–ज्ञान साहित्य। इसी को ध्यान मे रखकर कहा गया है: 'ऋते ज्ञानन्न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है।

इस पाठ्यक्रम के जो मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं उनका विवरण इस प्रकार है:

अर्थात् परमार्थ (मोक्ष) की कामना करने वाले के लिए वाणी का शुद्धता, मन की पवित्रता, इन्दिय संयम तथा दयालुता के भाव का होना आवश्यक है। दुःखों की निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है। ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। तृतीय वर्ष में मुक्ति का पाठ्यक्रम इतना सूक्ष्म और कठिन है कि वहाँ इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि अथवा त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रवेश भी संभव नहीं है। वह परमात्म तत्त्व इतना सूक्ष्म और अनिर्वचनीय है कि वहाँ केवल आत्म तत्त्व का प्रवेश ही संभव है। यदि आत्म तत्त्व उस परम तत्त्व को देख लेता है, समझ लेता है तो वह सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

नियमः जिस प्रकार लौकिक परीक्षा के कुछ नियम होते हैं उसी प्रकार पारलौकिक परीक्षा के भी नियम होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है :

★लौकिक परीक्षा में नकल करना अपराध है परन्तु पारलौकिक परीक्षा में नकल करना गुण है क्यों कि नकल का दूसरा नाम है– अनुकरण। यदि हम महापुरुषों की नकल अर्थात् अनुकरण करें तो क्या बुराई है!

★लौकिक परीक्षा या तो लिखित होती है या मौखिक। लेकिन पारलौकिक परीक्षा साधना तथा गुण परक होती है।

★लौकिक परीक्षा में एक निरीक्षक होता है और एक परीक्षक । परन्तु आध्यात्मिक परीक्षा में ईश्वर ही परीक्षक होता है और निरीक्षक भी।

★लौकिक परीक्षा का परीक्षार्थी किसी कमरे या हॉल में बैठ कर परीक्षा देता है लेकिन पारलौकिक परीक्षा के साधक के लिए एकान्त स्थान, वन प्रान्तर या नदी का तट आदि अधिक उपयुक्त होता है।

★भौतिक परीक्षा का परीक्षार्थी स्वार्थवश प्रतिस्पर्द्धा में सबको पछाड़ कर आगे बढ़ना चाहता है लेकिन आध्यात्म पथ पर बढ़ना चाहता है। उसका मुख्य उदेश्य होता है 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' ।

★भौतिक परीक्षा में परीक्षार्थी के लिखने के लिए अधिक से अधिक तीन घंटे दिए जाते हैं परन्तु आध्यात्मिक परीक्षा में मोक्षकामी को जन्म–जन्मान्तर लग जाते हैं।

★लौकिक परीक्षा में तीन श्रेणियाँ होती हैं: तृतीय श्रेणी द्वितीय श्रेणी और प्रथम श्रेणी । आध्यात्मिक परीक्षा में भी तीन श्रेणियाँ होती हैं। मनुष्य, देव और मुक्त । दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य लोक, स्वर्ग लोक और मुक्तात्मा लोक।

क्या आप भी पारलौकिक परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं? यदि नहीं तो अभी से अपनी चित्त रूपी उत्तर पुस्तिका पर साधना ज्ञान और वैराग्य के स्वर्णिम अक्षर लिखना शुरू कर दीजिए। और हाँ, यदि तैयारी न हो तो किसी महापुरुष की नकल (अनुकरण) करके अनुत्तीर्ण होने से बच सकते हैं ।

230 ,मध्य शाखा
आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार
मो. 9639149995

वैदिक प्रार्थना

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।। यजु. 19.39

I need cleansing and purification
of thoughts and actions
I have many failings and weaknesses
May the Enlightened One help me
cleanse and purify
my body and soul,
my mind and intellect,
my words and actions.
O Lord, make me pious and pure.

दोष मुझमें ढेर होंगे;
देवजन, ज्ञानी तपस्वी झाड़ पोंछ पवित्रा कर दें
मुझे; मेरी बुद्धि, मेरा मन तथा सब कर्म मेरे
शुद्ध और पवित्रा होवें।
अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी,
वायु, जिनसे यह बना है देह मेरा, करें निर्मल !
और प्रभु सर्वज्ञ तुम भी कलुष सब मेरे हटा कर
मुझे पूर्ण पवित्र कर दो!

आकर्षण-अनुकर्षण व विमान विज्ञान तथा महर्षि दयानन्द

● मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द जी के प्रमुख ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** है। महर्षि दयानन्द की घोषणा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वरीय ज्ञान व आध्यात्मिक विषयों में परम प्रमाण या स्वतः प्रमाण मानते थे और वेद के अतिरिक्त ऋषि-मुनियों आदि के बनाए गए ग्रन्थों, लेखों व विचारों को परतः प्रमाण मानते थे यदि वह वेदानुकूल हों। उनके समय में वेदों के प्रामाणिक भाष्य उपलब्ध नहीं थे। **अतः उन पर यह दायित्व था कि वह वेदों का प्रामाणिक भाष्य या वेदार्थ करें।** धार्मिक व आध्यात्मिक जगत् में भाषा की दृष्टि से संस्कृत को ही मान्यता थी। हमारे सभी धर्म संबंधी ग्रन्थ भी संस्कृत में ही हैं। अतः उन्होंने वेदों का भाष्य संस्कृत में किया। उनके समय में संस्कृत बहुत कम पण्डितों द्वारा जानी व समझी जाती थी। बड़े-बड़े धार्मिक विद्वान भी शुद्ध संस्कृत लिखना व बोलना नहीं जानते थे जबकि महर्षि दयानन्द शुद्ध व सरल संस्कृत बोलते थे जो हिन्दी भाषी लोग भी सहजता से समझ लेते थे। आर्ष व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन व प्रयोग तो प्रायः बन्द ही था। सभी धार्मिक जन लौकिक संस्कृत ही पढ़ते थे और वैदिक साहित्य का अर्थ करते हुए अनर्थ करते थे क्योंकि वह वेदों के पदों व शब्दों के यौगिक अर्थों से अपरिचित होते थे। यहाँ तक कि विश्वविख्यात वैदिक विद्वान मैक्समूलर भी वैदिक पदों के यौगिक अर्थ नहीं जानते थे। अतः महर्षि दयानन्द ने संस्कृत में इसलिए भाष्य किया कि उन पर सनातन धर्मी कहलाने वाले पौराणिक विद्वान यह आरोप न लगाएँ कि यह संस्कृत नहीं जानते। महर्षि ने वेदों का भाष्य वा वेदार्थ संस्कृत के साथ-साथ आर्य भाषा हिन्दी में भी किया। वेदों का भाष्य करते हुए चारों वेदों की भूमिका का लिखा जाना आवश्यक था जिससे वेद भाष्य के सभी पाठक महर्षि दयानन्द की वेदों संबंधी मान्यताओं व सिद्धान्तों का संक्षेप में परिचय जान सकें। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए उन्होंने चारों वेदों की भूमिका के रूप में **"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"** ग्रन्थ का प्रणयन किया। हमारा ज्ञान व अनुभव कहता कि वेदों पर इस ग्रन्थ के समान उपयोगी व वेदों के तात्पर्य या अभिप्राय बताने वाला दूसरा कोई ग्रन्थ संसार के साहित्य में भी नहीं है।

इस लेख का उद्देश्य मुख्यतः वेदों में आकर्षण-अनुकर्षण वा गुरुत्वाकर्षण के नियम का परिचय देना है जिसके लिए हमें एक विद्वान महोदय ने कहा है। महर्षि के उपर्युक्त ग्रन्थ **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** का एक अध्याय ही **'अथाकर्षणानुकर्षणविषयः'** अर्थात् आकर्षण व अनुकर्षण शीर्षक से है। इस अध्याय में 5 वेदमन्त्रों को प्रस्तुत कर उनका संस्कृत व हिन्दी में भाष्य किया गया है। इन पाँच मन्त्रों में 4 ऋग्वेद तथा 1 यजुर्वेद का मन्त्र है। वेदों में आकर्षण व अनुकर्षण विषय का विज्ञान है, यह जानने के लिए उन मंत्रों और उनके हिन्दी अर्थ को प्रस्तुत कर रहें है। ये पाँच मन्त्र व उनका हिन्दी भाष्य क्रमशः इस प्रकार है।

यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।।
ऋग्वेद अ. 6 अ.1 व. 6 मं.3

भाषार्थ—(यदा ते.) इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि **सब लोकों के साथ सूर्य का आकर्षण और सूर्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण है।** मन्त्र के दो अर्थ किए गए है। **पहला अर्थ**—हे इन्द्र परमेश्वर! आपके अनन्त बल और पराक्रम गुणों से सब संसार का धारण, आकर्षण और पालन होता है। आपके ही सब गुण सूर्यादि लोकों को धारण करते हैं। **इस कारण से सब लोक अपनी अपनी कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते। दूसरा अर्थ**— इन्द्र जो वायु, इसमें ईश्वर के रचे आकर्षण, प्रकाश और बल आदि बड़े गुण हैं। **उनसे सब लोकों का दिन दिन और क्षण क्षण के प्रति धारण, आकर्षण और प्रकाश होता है। इस हेतु से सब लोक अपनी अपनी ही कक्षा में चलते रहते है, इधर उधर विचल भी नहीं सकते।**

यदा ते मारूतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।।
ऋ. अ. 6 अ.1 व.6 मं.4

भाषार्थ—(यदा ते मारूती.) अभिप्राय—इस मन्त्र में भी आकर्षण विद्या है। हे परमेश्वर ! आपकी जो प्रजा, उत्पत्ति स्थिति और प्रलयधर्मवाली और जिसमें वायु प्रधान है, **वह आपके आकर्षणादि नियमों से तथा सूर्यलोक के आकर्षण करके भी स्थिर हो रही है। जब इन प्रजाओं को आपके गुण नियम में रखते हैं, तभी भुवन अर्थात् सब लोक अपनी कक्षा में घूमते और स्थान में बस रहे हैं।**

यदा सूर्य्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।।
ऋ. अ. 6 अ. 1 व. 6 मं. 5

भाषार्थ— (यदा सूर्य.) अभिप्राय—इस मन्त्र में भी आकर्षण विचार है। हे परमेश्वर ! जब उन सूर्यादि लोकों को आपने रचा और आपके ही प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं और आप अपने अनन्त सामर्थ्य से उनका धारण कर रहे हैं, इसी कारण से सूर्य और पृथिवी आदि लोकों और अपने स्वरूप को धारण कर रहे हैं। **इन सूर्य आदि लोकों का सब लोकों के साथ आकर्षण से धारण होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर सब लोकों का आकर्षण और धारण कर रहा है।**

...स्तम्नाद्रोदसी मित्रो
... ...वदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्त्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्।।
ऋ. अ.4 अ.5 व.10मं.3

भाषार्थ-(व्यस्तम्नाद्रोदसी.) अभिप्राय-इस मन्त्र में भी आकर्षणविचार है। हे परमेश्वर ! आपके प्रकाश से ही वैश्वानर सूर्य आदि लोकों का धारण और प्रकाश होता है। **इस हेतु से सूर्य आदि लोक भी अपने अपने आकर्षण से अपना और पृथिवी आदि लोकों का भी धारण करने में समर्थ होते हैं।** इस कारण से आप सब लोकों के परम मित्र और स्थापन करने वाले हैं और आपका सामर्थ्य अन्यन्त आश्चर्यरूप है। सो सविता आदि लोक अपने प्रकाश से अन्धकार को निवृत्त कर देते हैं तथा **प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप इन दोनों लोकों का समुदाय धारण और आकर्षण व्यवहार करते हैं।** इस हेतु से इनसे नाना प्रकार का व्यवहार सिद्ध होता है। **वह आकर्षण किस प्रकार से है कि जैसे त्वचा में लोमों का आकर्षण हो रहा है, वैसे ही सूर्य आदि लोकों के आकर्षण के साथ सब लोकों का आकर्षण हो रहा है और परमेश्वर से भी इन सूर्य आदि लोकों का आकर्षण हो रहा है।**

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।
यजुर्वेद अ. 33। मं. 43।।

भाषार्थ— (आकृष्णेन.) अभिप्राय— इस मन्त्र में भी आकर्षणविद्या है। सविता जो परमात्मा, वायु और सूर्य लोक हैं, वे सब लोकों के साथ आकर्षण, धारण गुण से सहित वर्तते हैं। सो हिरण्यय अर्थात् अनन्त बल, ज्ञान और तेज से सहित (रथेन) आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने के योग्य ज्ञान और तेज से युक्त है। इसमें परमेश्वर सब जीवों के हृदयों में अमृत अर्थात् सत्य विज्ञान को सदैव प्रकाश करता है और सूर्यलोक भी रस आदि पदार्थों को मर्त्य अर्थात् मनुष्य लोक में प्रवेश करता, **और सब लोकों को व्यवस्था से अपने अपने स्थान में रखता है।** वैसे ही परमेश्वर धर्मात्मा ज्ञानी लोगों को अमृतरूप मोक्ष देता, और सूर्यलोक भी रययुक्त जो ओषिधि और वृष्टि का अमृतरूप जल को पृथिवी में प्रविष्ट करता है सो परमश्वर सत्य असत्य का प्रकाश और सब लोकों का प्रकाश करके सबको जनाता है तथा सूर्य लोक भी रूपादि का विभाग दिखलाता है।

उपर्युक्त वेदमन्त्रों या उनके भाषार्थ से यह सिद्ध होता है कि सूर्य, पृथिवी व लोक-लोकान्तरों के परस्पर आकर्षण-अनुकर्षण का ज्ञान व विज्ञान वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति के समय से है। पृथिवीस्थ सभी अणु व पदार्थ भी आकर्षण के नियम से एक दूसरे से जुड़े या बँधे हुए हैं। वैशेषिक दर्शन व अन्य वैदिक साहित्य को पढ़कर विज्ञान विषयक अनेक बातों को सूक्ष्मता, गम्भीरता व किंचित् विस्तार से जाना जा सकता है।

इस लेख में वैदिक विमान विद्या का भी संक्षिप्त उल्लेख करना चाहते हैं। महर्षि दयानन्द ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' सन् 1876 में लिखा था जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ। उस समय तक संसार में कहीं पर न तो विमान बना था और न ही इसकी चर्चा भारत व यूरोप के किसी देश में थी। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ में सोलहवाँ अध्याय **'नौविमानादिविद्याविषयः'** विषय का लिखकर संसार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। महर्षि दयानन्द अपना यह ग्रन्थ मासिक अंकों में एक पत्रिका के रूप में प्रकाशित करते थे जो डाक से देश विदेश में इसके अग्रिम ग्राहकों को प्रेषित किया जाता था। इस प्रेषण सूची में लन्दन के प्रो. मैक्समूलर का नाम सबसे पहले था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सन् 1876-77 में यह विचार प्रो. मैक्समूलर सहित इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी देशों के अनेक लोगों तक पहुँच गए थे। इस ग्रन्थ ने मैक्समूलर के विचारों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था जिसका परिणाम उनका यह कथन है कि **वैदिक साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से होता है और इसकी समाप्ति स्वामी दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर होती है।** इसके बाद उन्होंने लन्दन में प्रशासनिक अधिकारियों को जो लैक्चर दिए उनका प्रकाशन **'महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित व प्रकाशित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक के बाद मुम्बई के प्राच्य विमानविद्या संशोधक श्री शिवकर बापू तलपड़े ने 31 वर्ष की आयु में सन् 1895 में न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे और वडोदरा नरेश सयाजीराव गायकवाड व सहस्रों दर्शकों की उपस्थिति में पूर्ण स्वदेशी उपकरणों के आधार पर मुम्बई के चौपाटी क्षेत्र में स्वनिर्मित विमान 'मरूत्सखा' उड़ाने का सफल प्रदर्शन किया था।** श्री तलपड़े महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त और आस्थावान वेदमतानुयायी आर्यसमाजी थे और मराठी मासिक पत्र 'आर्यधर्म' के सम्पादक भी थे। अतः हमारा अनुमान है कि पश्चिमी देशों में विमान का विचार महर्षि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और श्री तलपदे के सन् 1895 में विमानोड्डान का ही परिणाम हो सकता है। जो भी हो विमान निर्माण में **जो क्रान्ति आई है उसमें विमान व इससे जुड़ी अनेक सम्भावनाओं व स्थापनाओं पर विश्वास व्यक्त करने वाले प्रथम पुरुष महर्षि दयानन्द ही थे और विमान का प्रथम आविष्कार व सफल उड़ान का श्रेय राइट बन्धुओं से पूर्व श्री बापू शिवकर तलपड़े जी को है।** हम आशा करते हैं कि लेख की जानकारी पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

पता196 चुक्खूवाला-2
देहरादून-248001

सत्य में स्थित महात्मा आनन्द स्वामी

● आचार्य विद्या प्रसाद मिश्र

महात्मा आन्नद स्वामी सत्य में स्थित महापुरुष थे। सत्याचरण से सच्चे आर्य को जीवन यात्रा में अनेक लाभ हुए– भौतिक भी, आत्मिक भी। ऐसी कौन सी विजयश्री है, सफलता है या सिद्धि है जो गायत्री की साधना से उन्हें प्राप्त न हुई हो? यह ससार संघर्ष भूमि है। यहाँ मनुष्य को अपनी उन्नति के लिए, अपनी प्रगति और स्थायित्व के लिए तथा समाज में प्रतिष्ठा के लिए कदम–कदम पर संघर्ष करना पड़ता है। परन्तु इस प्रकार के संघर्ष में विजयश्री उसी को मिलती है जो सत्यपथ पर दृढ़ रहता है, जो सत्य का अवलम्बन लेकर अन्त तक उस पर टिका रहता है, वह जीवन–संघर्ष में सदैव सफलता पाता है। यह ठीक है कि सत्य का आश्रय लेकर चलने वाले सत्यार्थी को प्रारंभ में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं, किन्तु धैर्यपूर्वक सत्य पर डटे रहने से आशातीत लाभ भी होता है। सत्य पुण्य की खेती है। जिस प्रकार अन्न की खेती करने में आरंभ में कुछ कठिनाई उठानी पड़ती है, उसकी फसल के लिए थोड़ी प्रतीक्षा भी करनी पड़ती है, किन्तु बाद में जब वह कृषि फलीभूत होती है, तब घर धनधान्य से भर देती है, इसी प्रकार सत्य की कृषि भी प्रारंभ में थोड़ा त्याग, धैर्य, कष्टसहिष्णुता, तपस्या और बलिदान माँग लेती है, किन्तु जब वह फलती है तो सत्यनिष्ठ के जीवन को लोक से लेकर परलोक तक पुण्यों से भर देती है, उसे कृतार्थ कर देती है। संसार में जितने भी पुण्य हैं, सुकृत हैं, उनका मूल सत्य है। वस्तुतः महात्मा आनन्दस्वामी का सारा जीवन इस तथ्य का साक्षी है कि सत्यवादी की संसार में सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, जनता उनका हृदय से स्वागत करती है, अभिनन्दन करती है और उन्हें उच्चासन देती है। उनकी कीर्ति की सुगन्ध चारों ओर फैलती है। मृत्यु के बाद भी सत्यवादी अपने यशः शरीर से अमर हो जाता है। सचमुच सत्य मनुष्य के सम्मान, प्रतिष्ठा और आत्म–गौरव के लिए अमोघ कवच के समान होता है, जिसने इस कवच को धारण कर लिया, उसके लिए अपमान, निन्दा और अपवाद का काई कारण ही नहीं रहता।

सच्चाई के इस कवचधारी का पंजाब के जलालपुर जट्टाँ में जन्म हुआ। लाला खुशहालचन्द खुर्शद" के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। डीएवी के प्रथम प्राचार्य महात्मा हंसराज ने "आर्य गजट" में सम्मान सहित सत्यवादी इस युवक को नियुक्त किया। अनुभवी जौहरी ने हीरे को पहचान लिया। सम्पादन कला में दक्ष हुए। पत्रकारिता का दरवाजा खुल गया। धुन के धनी महाशय खुशहालचन्द जी की सरलता और निश्छलता का प्रत्यक्ष और परोक्ष में व्यक्तित्व पर अमिट प्रभाव पड़ा सच्चे साधक और सत्य के पुजारी का नैतिक बल इतना बढ़ जाता है कि उसकी तुलना बड़े–बड़े बलवानों से की जाती है। बड़ी से बड़ी बौद्धिक शक्तियाँ, मशीनी ताकतें और मानवीय सगठन भी सत्य के समक्ष परास्त होते देखे गये हैं। जिस तरह सत्यवादी हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा के सामने विश्वामित्र को घुटने टेकने पड़े।

हिन्दी गद्य में सत्यार्थ प्रकाश प्रथम गन्थ है। सर्वविदित तथ्य है कि महर्षि दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी, संस्कृत के अनुपम अद्वितीय विद्वान थे किन्तु जनहित में, राष्ट्रहित में हिन्दी की सर्वप्रथम वकालत की। देव दयानन्द के दृढ़ अनुयायी होने के कारण 1930 में लाहौर से **दैनिक मिलाप** हिन्दी में निकालना प्रारंभ कर दिया। उर्दू दैनिक मिलाप तो 1923 से निकल रहा था। उन दिनों पंजाब में हिन्दी का प्रचार उर्दू के मुकाबले न के बराबर था। परिणाम यह निकला कि दैनिक मिलाप का हिन्दी सस्करण खूब घाटे में जाने लगा। लगातार अनेक वर्ष आर्थिक हानि होने पर हिन्दी सस्करण को बन्द कर देने का सुझाव आया तो सत्यव्रतरूपी महाधन से युक्त महाशय खुशहाचन्द जी ने कहा, **"कोई बात नहीं उर्दू मिलाप की आय (लाभ) से हिन्दी मिलाप का घाटा पूरा करेंगे।"** हिन्दी सत्याग्रह में इनकी सक्रियता से जान आई। सच्चा आर्य सत्य का अन्वेषक परम्पराओं, रीतिरिवाजों, प्रथाओं एवं सामाजिक रूढ़ियों में आँखें मूँदकर नहीं चलेगा। अगर कोई परम्परा या प्रथा आज गलत है, उसके पालन से समाज में विषमता पैदा होती है, अधर्म फैलता, हिंसा होती है, अत्यन्त खर्चीली होने से घातक है, विकास में बाधक है, आत्मिक परतन्त्रता बढ़ाती है, तो एक सत्यनिष्ठ आर्य उन परम्पराओं, प्रथाओं व रिवाजों को मानने से इंकार कर देगा, वह घातक कुरीति को वैचारिक असत्य मानेगा। सभा प्रधान के रूप में उन्होंने अपने कृतित्व में सिद्ध कर दिखाया कि आर्य समाज प्राणिमात्र के लिए हितकर, सत्यवादी, बेजोड़ आन्दोलन है। 1938 में हैदराबाद के निजाम ने जब आर्यों के सार्वभौमिक पक्षपातरहित सिद्धान्तों दमन किया तो उस समय चुनौती को स्वीकारते हुए क्रान्तिकारियों का विशाल जनसमूह लेकर हैदराबाद पहुँचे। पाँच महीने कारावास में रहे अन्ततः विजयश्री प्राप्त हुई।

संसार का यह नियम है कि जो व्यक्ति हँसमुख प्रसन्नचित्त, आशावादी, उत्साही और संतुष्ट होते हैं, उनके पीछे–पीछे लोग फिरते हैं, क्योंकि हर साधारण व्यक्ति अपने जीवन में कुछ दुःख और चिन्ता छिपाए बैठा रहता है, वह अपना मन शान्त करने के लिए ऐसा सहारा ढूँढता है जहाँ उसके घावों को कुरेदा न जाए, उन पर मरहम लगाया जाए। खिले हुए गुलाब के चारों ओर भौंरे इसलिए मँडराते हैं, क्योंकि उसका फूल अपने आप में सर्वांगपूर्ण, प्रसन्न, विकसित और सफल दिखाई देता है। सूखे,, मुरझाए हुए और कुचले हुए तथा सड़े गले फूल पर भौंरा तो क्या कोई मक्खी भी नहीं बैठती। उसे उपेक्षा, तिरस्कार और उपहास के गर्त में फेंक दिया जाता है। कुढ़ने वाले व्यक्ति को अपनी कष्ट कथा सुनाकर कौन भला अपना दुःख दुर्भाग्य का रोना रोते रहने वाले लोगों के पास बैठकर भला कौन अपना मन क्षुब्ध करने को तैयार होगा? लोग तो दुःख में, संकट में और विपत्ति में भी हँसते रहने वाले लोगों की तलाश में रहते हैं। हर साल में मस्त रहने की, सन्तोष की व सदा प्रसन्न रहने की दैवीय कला स्वामी जी को भलीभाँति आती थी– इसलिए स्वयं मुस्कुराते रहे और सदा–हर घड़ी में सबको हँसाते रहे। जब भी देखो स्वामी जी के चेहरे पर सन्तोष की मुस्कान अठखेलियों करती रहती थी। सुनहरे फ्रेम के चश्मे से झाँकती आँखें स्नेहधार उड़ेलती रहती थीं।

दैनिक मिलाप और आर्य समाज की देखभाल करते–करते अपने युग के इस महामानव ने सोचा कि मनुष्य ने जब इस धरती पर आकर आँखें खोलीं, तब उसके पास क्या था? माता के उदर से जन्म लेकर इस पृथ्वी पर आया, क्या उस समय उसके पास वस्त्र, मकान वाहन या अन्य कोई सामान था? आज जो कुछ उनके पास दीख रहा है उसमें कुछ भी तो नहीं था। केवल एक छोटा सा नंगा तन था। वैराग्य पैदा हुआ, 1949 में सब कुछ त्याग संन्यासी बन गए।

क्रान्तिकारी, सत्यवादी आर्य की यह रोमांचकारी घटना है कि सन् 1929 में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ। मिलाप के विशेषांक में स्वतंत्रता संग्राम की सच्ची गाथा का वर्णन था। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के लिए प्रबल प्रेरणा और उत्साह का संचार था। इसी अंक में निर्भीक राष्ट्रभक्त, आर्यकुलरत्न महात्माजी के सुपुत्र श्री रणवीर जी का "भारत की जंगे आजादी के खामोश सिपाही" लेख प्रकाशित हुआ। सम्पादक महाशय खुशहालचन्द जी को इस राष्ट्रवादी निर्भीक कार्य के परिणाम में नौ महीने का कठोर कारावास भुगतना पड़ा।

पूज्य स्वामी जी का देशभक्त क्रान्तिकारियों से निरन्तर संपर्क बना रहता था। वे क्रान्तिकारियों के प्रकाश स्तंभ और प्रेरणा स्रोत थे। स्वामी जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। पत्रकारिता के क्षेत्र में जहाँ उन्होंने निर्भीकता और राष्ट्रभक्ति की लहर चलाई वहीं समाजसेवा के क्षेत्र में भी जब जहाँ कोई विपदा आई– दल–बल के साथ सेवा कार्य में जुट गए। सन् 1921 में मालाबार में जब हिन्दुओं पर अत्याचार हुआ तो वहाँ जाकर जिस अनुपम ढंग से सेवा के कठिन कार्य का संचालन किया वह इतिहास का स्वर्ण अक्षर बन चुका है। आध्यात्म के क्षेत्र में तो स्वामी जी ने ऐसी ज्ञान गंगा प्रवाहित की जिसमें डुबकी लगाकर लाखों लोग तृप्त व भाव विभोर हुए। आज भी प्रभुभक्ति, मानव और मानवता, सुखी गृहस्थ, भक्त और भगवान, यह धन किसका है?, शंकर और दयानन्द, प्रभु मिलन की राह आदि उनकी भक्तिप्रिय पुस्तके सरल ढंग से जिज्ञासुजनों को तृप्त करती हैं। स्वामी जी की वेदकथा का स्मरण होते ही ओठ गुनगुनाने लगते हैं–

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना
तुम्हीं से गये दास्तां कहते–कहते

सहायक प्राचार्य
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र,
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)
नई दिल्ली 110001

अशुद्धि शोधन

वेद मार्तण्ड डा. महावीर मीमांसक जी द्वारा लिखित लेख– 'पौराणिक पण्डित माधवाचार्य से मेरा शास्त्रार्थ', आर्य जगत् में 15 नवम्बर से 21 नवम्बर, 2015 के अंक के पृष्ठ चार पर छपा था।

लेख के चौथे कॉलम की पहली चार पंक्तियाँ निम्न प्रकार से पढ़ें–

"...अष्टाध्यायी के अनुसार अद्यतन भूतकाल में लुङ् लकार का प्रयोग होना चाहिए। लङ् लकार का प्रयोग अनद्यतन प्रत्यक्ष भूतकाल में ही होना चाहिए। मैं अद्यतन भूत में लुङ् लकार का ही प्रयोग करता था....."

अशुद्धि के लिए खेद है।

–संपादक

दयानन्द वाङ्मय पर्यालोचन

● प्रमा शास्त्री

...पिछले अंक का शेष

वेदभाष्य का वैशिष्ट्य

ऋषि दयानन्द की वेदविषयक विचारधारा तथा उनके वेदभाष्य के वैशिष्ट्य पर अनेक विद्वानों ने बहुत –सी पुस्तकें लिखी हैं। यहाँ हम स्वामीजी की कतिपय वैदिक मान्यता और वेदभाष्य सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख करते हैं–

(क) दयानन्दीय वेदभाष्य से पूर्व सभी सायणादि वेदभाष्य संस्कृत भाषा में ही थे। दयानन्दकालीन योरोपीय विद्वानों के भाष्य अंग्रेजी आदि विदेशी भाषा में उपलब्ध थे। किन्तु ऋषि ने संस्कृतभाषा के साथ–साथ जनसामान्य में व्यवहृत हिन्दी भाषा आर्यभाषा में भी वेदों का भाष्य उपलब्ध करा दिया। यह स्वामीजी के वेदभाष्य का व्यावहारिक वैशिष्ट्य है।

(ख) वेद किसी एक वर्ग विशेष की धरोहर नहीं है। उस पर मानवमात्र का उसी प्रकार अधिकार है, जैसे संसार के जल–वायु प्रभृति प्रकृति–प्रदत्त पदार्थ सबसे लिए हैं। स्त्री शूद्रादि वर्णस्थ व्यक्तियों को अनधिकार की चर्चा ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं है या परवर्त्ती प्रक्षेप हैं।[15] क्योंकि भारत के इतिहास में कवष ऐलूश तथा मातङ्ग सदृश अनेक व्यक्ति प्रसिद्ध हैं, जो शुद्र तथा अन्त्यज कुलों में उत्पन्न होकर वेदादि का अध्ययन कर 'ऋषि' पद को प्राप्त हुये।[16]

(ग) वेद सभी सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेदों में पशुबलि, नरबलि, मांस–भक्षण, परस्त्री–गमन आदि अनैतिक कार्यों का समर्थन तथा अश्लील बातें नहीं हैं। जो वेदभाष्य इनका समर्थन करते हैं, वे भ्रान्त हैं।

(घ) वेदों में परमेश्वर से प्रार्थना और उसकी उपसाना के लिए एक ही ईश्वर का वर्णन है। अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र आदि देववाची पद एक ही परमेश्वर के विभिन्न गुणों को बताने वाले नाम हैं। साथ ही वे श्लेषालङ्कार आदि द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अग्नि, सूर्य, विद्युत्, आत्मा, प्राण, राजा, सेनापति, वैद्य, विद्वान् आदि अर्थों को भी देते हैं।

(ङ) वेद के मन्त्रों में किन्हीं ऋषियों, राजाओं, नगरियों, नदियों आदि का इतिहास नहीं है। ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नामों का यौगिक अर्थ है। वेदों के शब्द यौगिक हैं, किसी एक ही अर्थ में रूढ़ नहीं है। ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नामों का यौगिक है, किसी एक ही अर्थ में रूढ़ नहीं हैं। इस कारण वे अनेक अर्थो को प्रकट करने में समर्थ हैं। यह आग्रह करना उचित नहीं है कि लोक में किसी शब्द का जो अर्थ है, केवल वही अर्थ सर्वत्र वेद में भी अभिप्रेत हो।

(च) वेदार्थ करते हुए पूर्वकृत विनियोगों का अनुसरण करना अनिवार्य नही है। उनसे स्वतन्त्र होकर भी वेदार्थ किया जा सकता है। इसके साथ ही वे ही विनियोग स्वीकार करने योग्य हैं, जो युक्तिसिद्ध, मन्त्रार्थानुसारी और वेदादि प्रमाण के अनुकूल हैं।

(छ) स्वामीजी से पूर्ववर्त्ती कोई भी वेदभाष्यकार अपने भाष्यों में प्रति मन्त्र षडजादि गानविद्योपयोगी स्वरों का उल्लेख नहीं करता। षडजादि सप्तस्वरों का प्रथम उल्लेख स्वामी दयानन्द ने ही किया है। यह स्वर–निर्देश ऋषि के यथोपलब्ध ऋग्वेद–भाष्य और सम्पूर्ण यजुर्वेद भाष्य में देखा जा सकता है।

स्वामीजी की वेद विषयक रचनाओं का विवरण देने के पश्चात् उनके अन्य ग्रन्थों में सर्वप्रमुख 'सत्यार्थप्रकाश' का विवरण प्रथमतः देना उचित प्रतीत होता है। स्वामीजी की सभी रचनाओं में 3(तीन) ग्रन्थ प्रमुख माने जाते हैं। इन्हें दयानन्द की प्रस्थानत्रयी कह सकते हैं। दार्शनिक जगत् में 'प्रस्थानत्रयी' के नाम से–(1) उपनिषद् (2) ब्रह्मसूत्र (3) भगवद्गीता इन तीन का अभिधान होता है। जिनकी व्याख्या करके मध्यकालीन दार्शनिक आचार्यो ने अपने को कृतकृत्य समझा है।

स्वामीजी की प्रमुख 3(तीन) रचनाएँ निम्नलिखित हैं– (1) सत्यार्थप्रकाश (2) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (3) संस्कारविधि। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और उसके साथ स्वामीजी की वेदविषयक अन्य रचनाओं का परिचय दिया जा सकता है। अब 'सत्यार्थप्रकाश' की चर्चा करते हैं–

(12) सत्यार्थ–प्रकाश (प्रथम संस्करण–1931 वि., द्वितीय संस्करण–1939 वि.)

धार्मिक जगत् में ख्यातिप्राप्त 'सत्यार्थप्रकाश' ऋषि दयानन्द की सर्वोत्कृष्ट तथा सार्वजनीन कृति है। सत्यार्थप्रकाश को सर्वाङ्गपूर्ण धर्मशास्त्र भी कह सकते हैं। इसका क्षेत्र विषय वैविध्य की दृष्टि से बहु व्यापक है। सत्यार्थप्रकाश के संशोधित द्वितीय संस्करण की पाण्डुलिपि ऋषि ने अपने निर्वाण (30 अक्तूबर, 1883 ई.से 14 मास पूर्व तैयार कर ली थी और उसकी प्रेस कापी बनाकर उसे प्रेस में भेजना प्रारम्भ कर दिया था। 27 अगस्त 1883 तक इसके 320 पृष्ठ छप चुके थे। ऋषि–निर्वाण के कारण बहुत समय तक प्रेस का कार्य बन्द रहा। अतः 1884 ई. में यह पूर्णरूप से छपकर जनता जनार्दन के समक्ष आ सका। इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में 10 (दस) समुल्लास तथा उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं। कुछ कारणों से प्रथम संस्करण में अन्तिम दो समुल्लास प्रकाशित नहीं हो पाये, किन्तु द्वितीय संस्करण (जिसे महर्षि ने अपने निधन से पूर्व ही परिष्कृत तथा संशोधित किया था) में ये दोनों समुल्लास विद्यमान हैं। सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की अपेक्षा आर्ष सिद्धातों का विस्तार से प्रतिपादन प्राप्त होता है। पूर्वार्द्ध में प्रधानता से वैदिक धर्म के प्रमुख सिद्धान्त विस्तार से व्याख्यात है और उत्तरार्द्ध में क्रमशः आर्यावर्त्तीय मत–मतान्तरों, चार्वाक–जैन–बौद्ध, ईसाईमत तथा मुस्लिममत के मन्तव्यों की समालोचना है। अन्त में महर्षि ने "स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश" में वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्त भी संक्षेपतः परिभाषित कर दिये हैं। प्रथम संस्करण के हस्तलेख में 'स्वमन्तव्यामन्तव्य' नहीं प्राप्त होता। महर्षि ने इस ग्रन्थ की रचना 'सत्य के अर्थ के प्रकाश' के लिए की, इसीलिए इस ग्रन्थ का अन्वर्थक नाम "सत्यार्थप्रकाश" रखा।[17]

सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण 1931 विक्रम संवत्सर में और संशोधित द्वितीय संस्करण मुंशी समर्थदान की देख–रेख में 1939 वि. सं. में प्रकाशित हुआ। प्रथम संस्करण की अपेक्षा द्वितीय संस्करण स्वयं लेखक द्वारा संशोधित और परिष्कृत होने के कारण पूर्व संस्करण की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक तथा महत्त्वपूर्ण माना जाता है, तथापि प्रथम संस्करण की भी कई विशेषताएँ ऐसी हैं जो द्वितीय संस्करण में प्राप्त नहीं होती। यह ग्रन्थ रत्न सामवेद की राणायनीय शाखा के अध्यायी, मुरादाबाद निवासी, उस समय काशी में उप जिलाधीश के पद पर कार्यरत, ऋषि–भक्त, राजा जयकृष्णदासजी की प्रेरणा से लिखा गया। इसलिए ऋषि के साथ राजा जयकृष्णदासजी भी अमर हो गये। अब प्रस्तुत हैं सत्यार्थप्रकाश की कतिपय विशेषताएँ–

1. सन्दर्भ बाहुल्य–इस ग्रन्थ में 373(तीन सौ तिहत्तर) ग्रन्थों का उल्लेख तथा 1542 (पन्द्रह सौ बयालीस) वेद मन्त्र तथा श्लोक आदि प्राप्त होते हैं। केवल सन्दर्भ ही नहीं सन्दर्भों के पते भी इस ग्रन्थ में विद्यमान हैं।

2. स्वल्पावधि में निर्माण– सत्यार्थप्रकाश का निर्माण 3॥ (साढ़े तीन) महीनों में हुआ यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। इस ग्रन्थ के द्वारा महर्षि के अगाध पाण्डित्य, अपूर्व स्मरणशक्ति, ऊहा और साधना का परिचय प्राप्त होता है ।

3. आलोचनात्मिका शैली–भारत की प्राचीन धार्मिक एवं दार्शनिक परम्परा में सैद्धान्तिक खण्डन–मण्डन, आलोचनाएँ प्रत्यालोचनाएँ प्राप्त होती हैं। आचार्य शङ्कर, कुमारिल भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शबरस्वामी, उदयनाचार्य आदि विद्वानों ने इस शैली का प्रचुरतया आश्रयण किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि मध्यकालीन सन्तों ने भी इस शैली का अवलम्बन किया है। आचार्य दयानन्द ने भी नवजागरण हेतु इस शैली की अनिवार्यता समझते हुए अपने 'सत्यार्थप्रकाश' में इसी खण्डन–मण्डन शैली का अवलम्बन तथा अनुसरण किया है। हिन्दी गद्य के इतिहास में प्रश्नोत्तर शैली पर शास्त्रीय पद्धति से लिखे गये खण्डन–मण्डनात्मक साहित्य के सृजन का सर्वप्रथम श्रेय महर्षि दयानन्द को ही जाता है। सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम चार समुल्लासों में यह खण्डन–मण्डन शैली विशेष रूप से देखी जा सकती है। तर्क–प्रमाण से परिपूर्ण शास्त्रीय तथा दार्शनिक पद्धति का ग्रन्थ होने के बावजूद इसमें हास्य–व्यंग्य के पर्याप्त पुट होने के कारण रोचकता में कहीं कोई न्यूनता नहीं है।

4. समस्या समाधान– आज हम सब भारतीय जनसंख्या–वृद्धिसमस्या, निर्धनसमस्या, भाषासमस्या, राजनीति में सुयोग्य नेतृत्व के चयन की समस्या, नवयुवकों की पथभ्रष्टता की समस्या आदि जिन भी समस्याओं से पीड़ित एवं चिन्तित हैं उन सब समस्याओं का 90 (नब्बे प्रतिशत) समाधान सत्यार्थप्रकाश में निहित है। केवल भारत की ही नहीं, विश्व की भी अनेक समस्याओं के निवारण में सत्यार्थप्रकाश सक्षम है।

5. अनुवाद– इस ग्रन्थ का अनुवाद न केवल संस्कृत, गुजराती, मराठी, सिन्धी, तमिल, तेलुगु, उड़िया आदि भारतीय भाषाओं में हो चुका है बल्कि अंग्रेजी, चीनी, जापानी, बर्मा, स्वाहेली, अरबी, फ्रैञ्च आदि विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में किया जा चुका है। उन अनुवादों के भी अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके है। ऐसा अनुमान है कि संख्या की दृष्टि से 80 लाख से भी अधिक सत्यार्थप्रकाश का अब तक प्रकाशन हो चुका है। हिन्दी भाषा का अब तक कोई भी ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जिसका इतनी भाषाओं में अनुवाद किया गया हो। इस प्रकार गुण और मात्रा की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति व्यापक है।

6. लोकप्रियता–स्वामी दयानन्द के दिवंगत होने के 130 वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी विविध प्रसासनिक, साम्प्रदायिक, आक्रमणों और विवादों को झेलता हुआ यह ग्रन्थ अपनी विजय यात्रा की ओर अनवरत अग्रसर है। यह इसकी लोकप्रियता में बहुत बड़े प्रमाण है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार "गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस के पश्चात् सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश ही है।"

समाप्त...

द्वारा डा. ज्वलन्त शास्त्री
चाणक्यपुरी, अमेठी

पत्र/कविता

बौद्धों के ब्रह्मदेश (म्याँमार) के रंगून से एक पाती

22सितम्बर 2015 का एयर इंडिया के वायुयान से मध्याह्न साढ़े बारह बजे हम म्याँमार की पूर्व राजधानी रंगून पहुँचे। ये हमारी ग्यारहवीं विदेश यात्रा है। इसके पूर्व हम विश्व के पाँच महाद्वीपों के 12 देशों व भारत के 27 प्रान्तों में वैदिक धर्म का प्रचार कर चुके हैं। 5अक्टूबर सोमवार को सायं 6.30 बजे म्याँमार में भारत के महामहिम राजदूत श्री युत गौतम मुखोपाध्याय जी (Indian High Commissioner) से उनके निवास पर जाकर एक शिष्ट मंडल के साथ मुलाकात की। आपसे वर्मा की वर्त्तमान राजनैतिक, धार्मिक आर्थिक परिस्थितियों पर चर्चा की । वैदिक सिद्धांतों पर विचार विमर्श किया और सत्यार्थ प्रकाश व अन्य वैदिक साहित्य भेंट किए और स्वाध्याय की प्रेरणा दी।

उत्तर प्रदेश मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के संयुक्त क्षेत्रफल के बराबर 6.78. 578 वर्ग कि.मी. का छोटा सा देश म्यांमार है। बिहार के गया से 1550 कि.मी. व दिल्ली से इसकी दूरी 2500 कि.मी. है। एशिया के मानसून क्षेत्र में स्थित इस का अधिकतम भाग कर्क रेखा व भूमध्य रेखा में है। इसकी सीमा चीन, लाओस देश थाईलैंड, बांग्लादेश के साथ-साथ भारत के अरुणांचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम व मणिपुर इन चार प्रान्तों को स्पर्श करती है। यह बंगाल की खाड़ी व अंडमान सागर के निकट होने के कारण गैस व पेट्रोल उत्पादक देश भी है।

प्राचीन काल से आर्यावर्त्त का एक भूभाग रहे इस देश को अंग्रेज़ों ने तीन बार में 1824 में गुलाम बना लिया था। अप्रैल 1937 में यह स्वतन्त्र उपनिवेश बन गया था पर जापान के कारण 1948 में यह स्वतन्त्र हो सका। 1962 से 2011तक यह गृहयुद्ध व सैनिक शासन से अभिसंतप्त रहा है अतः इसका यथोचित विकास नहीं हो पाया।

यहाँ की मुद्रा को Kyat कहते हैं जो भारत के 1रुपये में 20 के बराबर है। यहाँ बर्मी भाषा बोली जाती है जो संस्कृत व पाली भाषा का विकृत रूप है। यहाँ की जनसंख्या 5 करोड 32 लाख है जिसमें बौद्ध 80 प्रतिशत, ईसाई 7 प्रतिशत, मुस्लिम 4 प्रतिशत, आदिवासी 6 प्रतिशत, हिन्दु 2 प्रतिशत, व अन्य 1प्रतिशत, है। यहाँ के 99.9 प्रतिशत निवासी माँसाहारी हैं। बहुसंख्यक भारतीय मूल के जन तम्बाकू, पान, मद्यपानादि दुर्व्यसनों से ग्रस्त हैं।

सैनिक प्रशासन ने एक नीति के तहत संसद में 25 प्रतिशत सीटे सैनिकों के लिये आरक्षित कर दी हैं जिससे उनका वर्चस्व सदैव बना रहे। मुसलमान यहाँ कुछ भय से रहते हैं। सैनिक शासन के दौरान इनको इतना प्रताड़ित किया गया कि 10वर्षो में 3000 ग्राम खाली हो गये थे और 2 लाख मुस्लिम बांग्लादेश शरणार्थी बन गये। यहाँ 14 राज्य और 63 जिले हैं जिनमें 30 आर्य समाज सक्रिय है जिनमें प्रतिसप्ताह सत्संग होता है। 1885 व उसके बाद के वर्षों में बिहार उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बंगाल, आंध्र आदि प्रान्तों के कृषक, व्यापारी श्रमिक यहाँ आये थे उनकी चौथी, पाँचवी पीढ़ी चल रही है जो बौद्धों के इस देश की स्थाई निवासी बन गई है।

1896 में आर्य समाज की विचारधारा इस देश इस देश में पहुँची और वैदिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। 1960 में पूज्य आनन्द स्वामी जी , 1962 में स्वामी ध्रुवानंद जी व 1980 में (डॉ.) स्वामी सत्यप्रकाश जी यहाँ आये थे। पुनः कोई गुरुकुलीय स्नातक यहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा बुलाया नहीं जा सका है। आर्यसभा, वर्मा द्वारा माण्डले आर्य समाज के तीन मंजिला वातानुकूलित नव निर्मित भवन के उद्घाटन यज्ञ हेतु हमें आमंत्रित किया गया था, जिसमें पूरे देश के लगभग सभी आर्य समाजों के आर्यबन्धु सम्मिलित हुए थे। इसी कार्यक्रम में आए माण्डले क्षेत्र के केबिनेट मंत्री श्रीमान सा मियम्ब जी का हमने वर्मी भाषा का सत्यार्थ प्रकाश भेंट किया व पढ़ने की प्रेरणा दी। लगभग 6,7 आर्यसमाजों के 15 सार्वजनिक मंचों पर व 15 परिवारों में हमें अपनी बात को रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वेदों के आविर्भाव, ईश्वर के वेदोक्त स्वरूप, 16 संस्कार, शुद्ध आहार सहित अनेक विषयों पर हमने विस्तार पूर्वक चर्चा की। अनेक वेदमंत्रो की व्याख्या की। बौद्ध विचारों की ओर जन-सामान्य का भयावह झुकाव देखकर खण्डन किया, नव पीढ़ी को संभालने हेतु टिप्स दिये। योगदर्शन के समाधि पाद के 35 सूत्र व साधनपाद के 15 सूत्र पुरोहित वर्ग व कुछ अन्यों को पढ़ाए।

यहाँ संसदीय चुनाव नवंबर में होने वाले है 40 वर्षों से लोकतंत्र के लिए संघर्ष शील नोबल पुरस्कार प्राप्त बहन सुश्री आंग सूजी के जीतने की संभावना व्यक्त की जा रही है। पूरे देश में सैकड़ों बौद्ध विहार, स्तूपों का जाल विछा हुआ है। गरम पानी का झरना, चिड़िया घर,तिलक, गाँधी, नेहरूजी की स्मृति रूप माण्डले की जेल आदि बहुत से दर्शनीय स्थल हैं।

आचार्य आनंद पुरूषार्थी
166 अनोरढा मार्ग,
रंगून (वर्मा)

****

प्यारा वेद का सत्यज्ञान

जिसका न कोई धर्म न ईमान है।
हेराफेरी में ही रहता ध्यान है।।

किसी की पीड़ा सताए क्यों उसे।
जिसके जीवन में भरा अभिमान है।।

उसकी बुद्धि भ्रष्ट होकर रह गई।
जो यह कहता है कि क्या भगवान है।।

धन तिजोरी में भरते हैं बहुत।
दिल खुला जिसका वही धनवान है।।

जो कहें करके दिखाएं तो सही।
बातें कर लेना बहुत आसान है।।

अपने जीवन को लगाकर दाव पर।
भटता फिरता यूंही इन्सान है।।

मुक्त करदे वहमों के जंजाल से।
ऐसा प्यारा वेद का सत्यज्ञान है।।

गूंज उठता है मधुर वाताःवरण।
लगन से होता प्रभु गुणगान है।।

मगन जो निष्काम सेवा में रहे।
ऐसे जीवन की निराली शान है।।

लक्ष्य जीवन का बहुत प्यारा लगे।
सुखद होता स्वस्ति पथ निर्माण है।।

घर गृहस्थी फूलती फलती जहां।
संस्कारों में पली सन्तान है।।

प्राणिमात्र के भले की कामना।
वैदिक शिक्षा विश्व का कल्याण है।।

करनी कथथी में कोई अन्तर न हो।
सरल जीवन की खरी पहचान है।।

सफलता करती है उसको नमस्कार।
जिसकी बुद्धि शुद्ध मन बलवान है।।

वेदप्रकाश शर्मा धारीवाल
103 अंकुर-बी, हालत
वलसाड-396001 गुजरात

सत्कर्म का प्रतीक है 'दान'

● कृष्ण मोहन गोयल

मकानों की शोभा स्वर्ण कुंडल पहनने से नहीं होती है अपितु सुन्दर वचन सुनने से होती है और हाथों की शोभा सोने के कंगन पहनने से नहीं होती है बल्कि दान करने से होती है, ऐसा शास्त्र में कहा गया है।

सम्पूर्ण मानव समाज में सहिष्णुता और सद्भावनायुक्त विचारों वाले तथा सत्कर्म करने वाले ही दान की परम्परा को अपनाते हैं। यह भावना सभी धर्मों और सम्प्रदायों में सदियों से चली आ रही है। इसके लिए इस्लाम धर्म मे 'जकात' शब्द प्रचलित है जो प्रायः रमजान के महीने में जरूरतमंदों को दिया जाता है । विश्व के सभी देशों में धार्मिक स्थल या पूजास्थल, अनाथालय, वृद्धाश्रम, शिक्षण संस्थान, विद्यालय, चिकित्सालय, धर्मशाला, जलाशय, कुएँ आदि सभी दान से ही चलाये जाते हैं। मदर टेरेसा ने निराश्रितों के लिए अपनी झोली फैलाने में कभी हिचक नहीं दिखाई।

'दान' शब्द से तात्पर्य है जो किसी भी असहाय प्राणी को बिना किसी प्रतिकार के परोपकार की भावना और श्रद्धा से सहयोग दिया गया हो। समाज में असमानता दूर करने के लिए भी 'दान' शब्द का प्रयोग किया जाता है–

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं यथा।
दरिद्राय दीयते दानं सफलं तत् पाण्डुनन्दन।।

कर्णेन शोभते मधुर वचनं न तु स्वर्ण कुंडलं।
दानेन हस्ताभ्यां शोभते न तु स्वर्ण कंकडम्।

अर्थात हे पाण्डुपुत्र अर्जुन मरुस्थल में जैसे वर्षा तथा भूखे व्यक्ति को दिया गया भोजन सफल होता है उसी प्रकार दरिद्र को दिया गया दान सफल होता है।

यूँ तो सभी दिये गये दान प्रशंसनीय हैं चाहे वे किसी विपन्न याचक को भूख मिटाने के लिए दिया गया हो। दरिद्र, निर्धन, विपन्न, असहाय, पीडित, निराश्रित को दिया गया दान इसलिए सफल होता है क्योंकि वह अपने अभावों अर्थात् अपने व अपने परिवार के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा आदि मूलभूत आवश्यकताओं को इस दिये गये दान से परिपूर्ण कर लेता है और मन में व्याप्त विकलता से दूर होकर मन में शान्ति का अनुभव करता है। ऐसा शास्त्रों में कहा गया है कि दान देने से पूर्व पात्रता, स्थान और समय का आंकलन भी कर लेना चाहिए।

विश्व के सबसे प्रमुख युवा उद्यमी 'बिलगेट्स' ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग निराश्रितों के हित के लिए समर्पित किया है और दान शब्द की नई परिभाषा लिखने को आतुर है।

दान के लिए बड़ी धनराशि आवश्यक नहीं है बल्कि छोटी से छोटी धनराशि से प्रारम्भ किया जा सकता है जो आगे बढ़ कर एक विशाल रूप ले लेता है। यदि आप बड़ी धनराशि या वस्तु का दान देने में अक्षम है तो आप छोटी से छोटी धनराशि या वस्तु से भी दान कर सकते हैं बस आपमें श्रद्धा होनी चाहिए और मानव के प्रति सहयोग की भावना। यह आवश्यक नहीं है कि आप हाथी को ही भोजन कराएँ आप चीटी को भी थोडा सा मीठा मिलाकर भुना हुआ आटा या अन्य वस्तु खिला सकते हैं। इस दान का भी उतना ही प्रभाव होगा जितना कि हाथी को या हजारों व्यक्तियों को भोजन कराने का। पक्षियों को दाना डालना भी अत्यन्त परोपकारी माना जाता है।

आप अपने या परिवार के सदस्यों के जन्मदिवस, विवाह की वर्षगाँठ या किसी के अवसान दिवस पर भी श्रद्धापूर्वक दान देकर अपने व अपने पारिवारिक जनों के जीवन को सार्थक कर सकते हैं। इसमें केवल धनराशि ही नहीं बल्कि रक्तदान, अंगदान, अभयदान, अन्न–वस्त्र, शिक्षण शुल्क, शिक्षण सामग्री आदि जीवन सार्थक वस्तुएँ दान में दे सकते हैं। भारतीय संस्कृति में ऐसी मान्यता है कि दान देने से मन को शान्ति मिलती है।

कुछ साम्यवादी देशों में भी यदा–कदा धार्मिक संस्थानों द्वारा निराश्रितों को धमार्थ दान दिया जाता है, जिसमें अनेक भामाशाहों की भागीदारी होती है।

जिनके पास कुछ भी दान करने के लिए नहीं होता है और वे हर प्रकार से दान करने में असमर्थ हैं, वे भी किसी एक स्थान पर बैठ कर शीतल जल का प्याऊ लगाकर राह चलने वाले मानव को शीतल जल पिलाते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा किया यह दान 'महादान' कहलाता है।

शास्त्रानुसार 'दान' एक 'महान सत्कर्म' है। तो आइए, हम सब भी इसमें सम्मिलित हों और इसी प्रकार मिल कर कुछ न कुछ दान की भावना जागृत करें और समाज, राष्ट्र और विश्व का भला कर अपना और अपने परिवार का लोक और परलोक सुधारने का मार्ग प्रशस्त करें।

कृष्ण मोहन गोयल
1/3 बाजार कोर अमरोहा

☞ *पृष्ठ 05 का शेष*

ईश्वर की महिमा...

मांगलिक से ही होना चाहिए, नहीं तो कोई दुर्घटना अथवा अन्य कुछ हो सकता है। वाह रे ! भारत के कुसंस्कारी जन ! उनकी ऐसी कथनी को आज भी मान रहे हैं। किन्तु क्या विदेशी लोग मांगलिक नहीं होते? वे लोग तो इस कुप्रथा को मानते ही नहीं। तभी तो उधर विदेशी लोग विज्ञान में केवल, 18से 19 वी सदी में ही विज्ञान मे तरक्की करने लऐ, जिनका लोहा आज सारा संसार मानता है ।

ब्राह्मण लोग, दूरदर्शन, दूरभाष, कम्प्यूटर आदि का जो व्यवहार करते है, तो क्या उनके पुराणों को देखकर वे सब यन्त्र बनाये गये है? या उनके देवी–देवताओं की मूर्त्तियों के मन्त्त से बने है? आज कोई बीमार पड़ जाता है तो मेडिकल साइंस पर ही विश्वास करता है।

आदि सृष्टि के पूर्व 'सर्वज्ञसर्वशक्तिमान के अलावा कोई नहीं जानता था कि परमाणुओं से पाँच सूक्ष्म भूत और पांच सूक्ष्म भूतों से भिन्न–भिन्न गुण स्वभाव वाले पाँच महाभूतों को इस विश्व के लिये जीवन उपयोगी क्यों बनाया? और सूर्य के प्रखर प्रकाश के किरणों को धरती पर आने के लिये उसे कोमल और ऊर्जावना कैसे बनेगा ?

तो उसके लिये चन्द्र और वायु मण्डल के ऊपर–ऊपर सात स्तरों का निर्माण कर दिया ताकि उनसे छनकर सूर्य का प्रकाश तिरछा और कोमल बनकर ऊर्जाप्रदान कर सके, क्योंकि उन तत्वों के सम्बन्ध से ही वनस्पति एवं शरीर धारी प्राणियों तथा सर्वश्रेष्ठ मानव को उत्पन्न करना था।

इसलिए पहले तो 'पृषद' नामक भक्ष्यान्न वनस्पतियाँ उत्पन्न की, उसके पश्चात 'जल' थल और दिशाओं में उड़ने के पहले अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों, सूक्ष्म भुतों, एवं सूर्य के प्रकाश से भूमि के गुफाओं में 'रज–वीर्य' जैसे उपादान जब बनागये तब उनमें आत्माओं के संयोग से भ्रूण उत्पन्न होगए। फिर उनके अंगो का निर्माण, यथा–द्यौः से शिर का, चन्द्र से मनन शक्ति का, सूर्य अग्नि के गुणों से रूप देखने के लिये आँखों का निर्माण हुआ। दिशाओं (अंतरिक्ष) के गुणों से शब्दो सुनने के लिये कानोंका निर्माण हुआ। वायु के गुणों से स्पर्श बोध करने के लिये त्वचा का निर्माण हुआ। जल के गुणों से रसों को जानने के लिये रसना अर्थात विद्या और मुख का निर्माण हुआ और पृथिवी के गुणों से उत्पन्न वनस्पति आदि के गन्ध सुगन्ध को जानने एवं प्राणायाम के लिये नाक का निर्माण हुआ।

इस प्रकार परमेश्वर [illegible] आगे पीछे को अपनी सर्वज्ञता की दृष्टि से देखकर अपनी महान सामर्थ्य की शक्ति से प्रकृति के परमाणुओं द्वारा सारे उपयोगी तत्वों की रचना की है। कोई भी सृष्टि में निरर्थक नहीं है खास बात यह [illegible] की सारी सृष्टियाँ परस्पर एक दू[illegible] सम्बन्धित हैं।

सर्वव्यापक सर्वोपरि परमेश्वर के अलावा कोई नहीं जानता था कि मानव उत्पत्ति काल के पूर्व विभिन्न प्रकार के परमाणुओं से प्राणियों में श्रेष्ठ मानव शरीर के उपकरण एवं उनके मस्तिष्क में कितने प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म स्नायु एव कोशिकाओं का निर्माण हो ताकि उसकी आत्मा चेतन आदि गुणों को मस्तिष्क आदि साधनों से सोच–विचार कर सके। आँखों के साधन से देख सकें। कानों से सुन सकें। वायु आदि के स्पर्श का त्वचा द्वारा बोध कर सके। जल से प्यास मिटा सके और नाक से प्राणापन एवं गन्ध–सुगन्ध का ज्ञान हो सके। हाथ और पैरों द्वारा अपने कर्मों को कर सके। पर वह अपनी मन बुद्धि द्वारा कमी को करने न करने और विपरित करने में स्वतन्त्र होने से जैसा भला–बुरा करता है उसे वैसा ही सुख दुःखों को भोगन पड़ता है।

सुख दुःख भोगने के अनेक कारण होते हैं। अमुक रोग के लिये कर्म न करते हुए भी वह रोग हो जाता है और दुःख भोगना पड़ता है। किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा भी सुख और दुःख प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पूर्व एवं वर्तमान में किये हुए कर्मों से भी सुख–दुःख प्राप्त होता रहता है। प्रश्न–जीवन का प्रारम्भ भौतिक वादियों ने प्रोटोप्लाज्म' को बताया है। उत्तर–भौतिक वादियों के मत चेतन प्रोटोप्लाज्म ही है और प्रोटोप्लाज्म में जो शहद की भाँति तरल पदार्थ भरा है वह कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और फासफोरस आदि12 प्रकार के भौतिक पदार्थों से ही बना है, जो केवल जड़ है। ये भौतिक पदार्थ भी इलेक्ट्रोनों के न्यूनाधिक मेल से बनते हैं। एलेक्ट्रोन खण्ड खण्ड़ है। अतः हमारे देशी भाषा में ये सारे पदार्थ परमाणुओं से ही बन जाते हैं। प्राणियों के शरीर भी प्राकृतिक परमाणुओं से बन जाते है।

परन्तु 12 प्रकार के मिश्रित पदार्थों से जो चेतनोपति का ज्ञान है, उसे किसी वैज्ञानिक ने उत्पन्न नहीं किया है, वह तो आत्मा का साधन होने से उसके शरीर के साथ ही उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह कि प्रोटोप्लाज्म आत्माका उत्पादक नहीं, उसके प्रकाश का माध्यम है जो आत्मा के सूक्ष्म शरीर के साथ उनकी भी उपत्ति होती है। इसका प्रमाण यह है कि जीवात्मा के न रहने पर वह जड़ जो तरल पदार्थ है जम जाता है। कलरस भी जो गर्भ का प्रारम्भिक रूप केवल कुछ कोशों का गोला रहता है, सूक्ष्म रूप में उसका भी बिना आत्मा संयोग के निष्क्रिय रहता है। यदि उन भौतिक पदोर्थों से ही आत्मा (जिसमें चेतन आदि के गुण विद्यमान है) की उत्पत्ति होती, तो वैज्ञानिक जन का कब का एक प्राकृतिक खोपड़ी आकार के कम्प्यूटर बनाकर उसे चैतन्य कर देते और उसे सुख दुःख का अनुभव भी लगता । वैज्ञानिक गण महामशीन द्वारा सृष्टि के रहस्य को खोजते रहेंगे और उन्हें नये–नये ईश्वरीय तत्वों के निर्माण मिलते रहेगे फिर भी उस की महिमा का पार नहीं पा सकेंगे।

मु. पो. मुराराई, जिला–वीरभूम
(पं. बंगाल) 731219,मों. 8158078011

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 25-26 \11 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

डी. ए. वी. मूनक में लगा रक्त दान शिविर

बाबु बृश भान डी. ए. वी. सी. सै. पब्लिक स्कूल, मूनक में एक रक्त दान शिविर आयोजित किया गया। शिविर का शुभराम्भ वैदिक यज्ञ से किया गया जिसमें विद्यायलय के प्रिंसिपल श्री संजीव शर्मा जी एवं अन्य अध्यापकों ने भाग लिया। शिविर का उद्घाटन श्री नीरज शर्मा प्रिंसिपल डी. ए. वी. सी. सै. स्कूल, जाखल ने किया। राजिंदरा मैडिकल कॉलेज ब्लड बैंक पटियाला से आए डॉक्टर श्री मती शैली सहित 13 सदस्यों के दल ने शिविर का कार्यभार सुचारू रूप से संभाला। इस शिवर कुल 110 इकाई रक्त एकत्र हुआ।

विधालय के प्राचार्य श्री संजीव शर्मा ने स्कूल प्रबंधन समिति के चेयरमैन जस्टिस अशोक भान, प्रबन्धक श्री मती मधु बहल, क्षेत्रीय निर्देशक श्री विजय कुमार को शिविर आयोजन का मुख्य प्रेरणा स्त्रोत बताया। उन्होंने शिविर के सफल आयोजन में छात्रों, उनके अभिभावकों, अध्यापकों एवं स्थानीय लोगों के अमूल्य योगदान देने पर बहुत–बहुत धन्यवाद दिया।

डी. ए.वी. सैक्टर–14, फरीदाबाद में पर्यावरण सुरक्षा का आह्वान किया गया

डी.ए. वी. पब्लिक स्कूल, सैक्टर–14, फरीदाबाद में विशेष प्रार्थना–सभा का आयोजन किया गया जिसमें विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री सचिन कुमार–हरियाणा स्टेट पॉल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड, पधारे। उन्होंने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आप सौभाग्यशाली हैं कि आपको शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला है, ऐसे भी बहुत से बच्चे हैं जो इससे वंचित हैं।

दीपावली के अवसर पर उन्होंने इस त्यौहार की महत्ता का वर्णन किया व सभी को इसकी बधाई दी। बच्चों को पटाखे न चलाने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा कि आज जिस तरह से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है हमें पटाखे न चलाने की मुहिम को गम्भीरता से लेना है और अपने आप पास के लोगों को भी प्ररित करना है। श्री सचिन कुमार ने बच्चों को पटाखे ने चलाने की शपथ दिलाई व छात्रों को एक नारा दिया कि "अच्छे बनो और अच्छे बनाओ"।

डी.ए.वी. कॉलेज चीका में नये सत्र का शुभारंभ हुआ यज्ञ के साथ

डी.ए.वी. कालेज चीका में नये सत्र की शुरुआत यज्ञ के साथ की। प्रातः काल सर्वप्रथम ओ३म् नाम को दीर्घ ध्वनि के साथ उच्चारित कर सबने गायत्री मंत्र का उच्चारण किया। उसके बाद डी.ए.वी. सी.से. पब्लिक स्कूल चीका के आचार्य सत्यवीर शास्त्री ने विधिवत् यज्ञ की शुरुआत की। यज्ञ के मुख्य यजमान डी.ए.वी. कालेज चीका के प्राचार्य श्री रमेशलाल डाण्डा थे। कालेज के सभी प्रोफेसर तथा डी.ए.वी. कालेज चीका परिवार के सभी सदस्यों ने मिलकर पवित्र यज्ञ में मिलकर यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान की। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् डी.ए.वी. कालेज चीका के यशस्वी प्राचार्य जी ने यज्ञ में सम्मिलत सभी प्राध्यापकों को सम्बोधित करते हुए कहा–यह इस कालेज का 36 वाँ सत्र है। हम निरंतर डी.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली के मार्गदर्शन में अहर्निश प्रगति कर रहे हैं। डी.ए.वी. की शिक्षा ज्ञान–विज्ञान एवं संस्कारों के लिए पूरे देश विदेश में पहचानी जाती है। यह कालेज इस क्षेत्र में डी.ए.वी. शिक्षा का का मुख्य केन्द्र है।

कार्यक्रम की समाप्ति पर यज्ञ के पुरोहित सत्यवीर शास्त्री ने आशीर्वाद के मंत्र बोले और प्राचार्य जी ने अपने कर कमलों से सभी के उपर फलों की वर्षा की। शांति पाठ के साथ यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. ईस्ट आफ लोनी में विशेष यज्ञ का आयोजन

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल ईस्ट आफ लानी रोड़ दिल्ली में आर्य युवा समाज द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। आर्य युवा समाज के सभी छात्रों द्वारा विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया उस अवसर पर विद्यालय की प्राचार्या एवं आर्य युवा समाज की प्रधाना श्रीमती समीक्षा शर्मा जी ने सभी को स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आदर्शों कोअपने जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया। प्राचार्या जी ने स्वामी जी के समाज एवं राष्ट्र के लिये किये गये अमूल्य योगदान को स्मरण करते हुए कहा कि "महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान विचारक, सच्चे देशभक्त, अद्भुत चिन्तक, योगी एवं समाज सुधारक थे। स्वामी जी की शिक्षाओं से प्रेरित होकर ही लाला लाजपत राय, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद जैसे क्रान्तिकारियों ने देश के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया था। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को समाप्त कराया गया था।" इस अवसर पर प्राचार्या महोदया ने सभी को शुभकामनाएं देते हुए कहा कि "हम पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिये पटाखे नहीं चलाने चाहिएँ।" इससे पूर्व विद्यालय के छात्रों द्वारा विशेष प्रार्थना की गई, जिसमें छात्रों द्वारा पटाखों के विरुद्ध जागरुकता पर आधारित नाटक, कविता एवं भाषण आदि प्रस्तुत किये गये। छात्रों द्वारा पर्यावरण जागरुकता रैली एवं स्वच्छता अभियान का आयोजन भी किया गया। सभी छात्रों ने स्वामी दयानन्द के आदर्शों को अपनाने एवं प्रदूषण मुक्त दीपावली मनाने का संकल्प लिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**